प्रवचन-क्रम

पहला प्रवचन

सरलता, सजगता और शून्यता

सुबह-सुबह एक झील के किनारे से नौका छूटी। कुछ लोग उस पर सवार थे। नौका ने झील में थोड़ा ही प्रवेश किया होगा कि जोर का तूफान आ गया और बादल घिर आए। नौका डगमगाने लगी। आज की नौका नहीं थी, दो हजार वर्ष पहले की थी। उसके डूबने का डा पैदा हो गया। जितने लोग उस नौका पर थे, सारे लोग घबड़ा गए। प्राणों का संकट खड़ा हो गया। लेकिन उस समय भी उस नौका पर एक आदमी शांत सोया हुआ था। उन सारे लोगों ने जाकर उस आदमी को जगाया और कहा कि क्या सारे रहे हो और कैसे शांत बने हो। प्राण संकट में हैं, मृत्यु निकट में है और नौका के बचने की कोई उम्मीद नहीं है। तूफान बड़ा है और दोनों किनारे दूर है। उस शांत सोए हुए व्यक्ति ने आंखें खोलीं और कहाः कितने कम विश्वास के तुम लोग हो, कितनी कम श्रद्धा है तुममें। कहोझील से कि शांत हो जाए। वे लोग हैरान हुए कि झील किसी के कहने से शांत होती है! यह कैसी पागलपन की बात है! लेकिन वह शांत सोया हुआ आदमी उठा और झील के पास गया और उसने जाकर झील से कहा, झील! शांत हो जाओ! और आश्चर्यों का आश्चर्य कि झील शांत हो गई।

यह आदमी जीसस क्राइस्ट था और झील गैलीली झील थी और उनके साथ उनके दस-बारह मित्र थे। यह कहानी एकदम सच है। आज हर आदमी झील पर सवार है, हर आदमी नौका पर सवार है और कोई आदमी जब तक जीवन में है कभी जमीन पर नहीं है, हमेशा झील में है। एक भी दिन ऐसा नहीं है जब आंधी नहीं आती है, तूफान नहीं आता है। हम रोज ही तूफान में घिरे हैं। लेकिन अगर हममें श्रद्धा हो, आत्म-श्रद्धा, और हम झील में कह सकें कि शांत हो जाओ, तोझील निश्चित शांत हो जाती है। कैसे हम उस झील को कहें जो अशांत बन गई? तूफान और आंधियों से पूर्ण उस चित्त की झील में कैसे शांति ला सकते हैं?

आपमें भी वह क्षमता आ सकती है कि आप आंख उठा कर झील की तरफ देख लें तोझील शांत हो जाएगी। यह कहने की भी जरूरत न पड़ेगी कि झील, शांत हो जाओ। क्योंकि तूफान हमारा ही पैदा किया हुआ है और आंधी हमारी पैदा की हुई है। जिस अशांति में हम खड़े हुए हैं, मैं चाहूं तो उसे इसी क्षण मिटा सकता हूं। और जिस अंधकार को मैंने निर्मित किया है उसको मिटाने की पूरी सामर्थ्य और शक्ति मुझमें है। मनुष्य कितना ही पाप करे और कितना ही अशांत हो और कितना ही दुःख में हो और कितना ही पीड़ा में हो, एक सत्य स्मरण रख लेने जैसा कि सब उसका अपना बनाया हुआ है। और इसीलिए इसी सत्य में से एक आशा की किरण भी निकल आती है कि जो खुद का बनाया हुआ हो उसे हम खुद मिटाने के हमेशा हकदार होते हैं।

शांति की आंख सत्य के दर्शन देने में समर्थ बनाती है। जब भीतर शांति होती है और भीतर के चित्त की झील पर कोई लहर नहीं होती है, कोई आंधी नहीं होती, तो हम दर्पण बन जाते हैं और परमात्मा का प्रतिबिंब हममें प्रतिफलित होने लगता है। तब हमारी अंतरात्मा अपनी गहराइयों में उस सत्य को प्रतिबिंबित करने लगती है, जो चारों तरफ व्याप्त है और हमें दिखलाई नहीं पड़ता है। हम अशांत हैं इसलिए सुन नहीं पाते उस आवाज को जो चारों तरफ मौजूद है और हम इतने व्यस्त और उलझे हुए हैं कि देख नहीं पाते उस सत्य को जो चारों तरफ खड़ा हुआ है। काश, हम व्यस्त हो जाएं, हमारा चित्त शांत हो जाए तो जो जानने-जैसा है वह जान लिया जाएगा और वह जो पाने जैसा है वह पा लिया जाएगा। तीन सूत्र हैं सरलता, सजगता और शून्यता। बहुत बार सुना होगा आपने कि जीवन सरल होना चाहिए। बहुत बार सुना होगा आने कि जीवन सरल होना चाहिए।

बहुत बार सुना होगा कि जितनी सरलता हो, उतना जीवन ऊंचा हो जाता है। लेकिन शायद ही आपको पता हो कि सरलता कैसे पैदा होती है? यदि आप सोचते हों, सादे वस्त्र पहन लेने से सरलता पैदा होती है, तो धोखे में होंगे। सादे वस्त्र पहनने से सरलता पैदा नहीं होती। बहुत जटिल लोग भी सादे वस्त्र पहने देखे जाते हैं। अक्सर जो भीतर जटिल होते हैं वह बाहर सरलता का वेश बना लेते हैं, इसलिए नहीं कि दुनिया को धोखा दे सकें, इसलिए कि अपने को धोखा दे सकें। क्योंकि जो जितना जटिल होता है वह उतना सरल दिखाना चाहता है, दूसरों की आंखों में भी और अपनी आंखों में भी। इसी भांति वह अपनी जटिलता को छिपाने और जटिलता से बचने का उपाय करता है। इसलिए दुनिया में जो जटिल लोग बहुत सरल होते देखे जाते हैं, वह सरलता का अयास कर लेते हैं और बाहर से सरलता ओढ़ लेते हैं। ओढ़ी हुई सरलता का कोई मूल्य नहीं है। सीधे-सादे भोजन से भी कोई सरल नहीं हो जाता है। कोई अत्यंत विनम्रता प्रदर्शित करे उससे भी सरल नहीं हो जाता है। क्योंकि विनम्रता के पीछे अकसर अहंकार खड़ा रहता है और विनम्र आदमी हाथ जोड़कर सिर झुकाता है तो सिर तोझुकता है, लेकिन अहंकार नहीं झुकता है। और विनम्र आदमी को भी यह भाव बना रहता है कि मुझसे ज्यादा और कोई विनम्र नहीं है और उसको भी आकांक्षा होतीं है कि मेरी विनम्रता और मेरी सरलता स्वीकृत की जाए और सम्मानित हो। सरलता को इस भांति ऊपर से तो साधना आसान है, लेकिन उसका कोई मूल्य नहीं है।

मैं एक गांव में गया था। एक साधु वहां रहता था। उनसे भी मिलने वहां गया। जब मैं उनके झोपड़े पर पहुंचा तो खिड़की में से देखा कि वह नंगे अपने कमरे में टहल रहे हैं। मैंने दरवाजा खटखटाया। उन्होंने जल्दी से चादर को लपेटा और दरवाजा खोला। मैंने उनसे पूछा, आप यहां क्या करते थे? तो वह बोला, आपसे क्या छिपाऊं, मैं मुनि की दीक्षा लेना चाहता हूं तो नग्न रहने का अयास कर रहा हूं। मैंने कहाः बेहतर हो, किसी सर्कस में भर्ती हो जाएं, क्योंकि नग्न रहने का अगर अयास करके कोई आदमी नग्न हो गया तो वह नग्न होना बिल्कुल झूठा है। अयास से जो नग्नता आएगी उसका कोई मूल्य है? हां, सर्कस में उसका मूल्य हो सकता है, जीवन में क्या मूल्य हो सकता है! एक आदमी अयास करके नग्न भी खड़ा हो जाए तो अत्यंत सरल नहीं हो जाता, क्योंकि नग्नता भी उसकी साधी हुई है। वह भी जटिल है, वह भी कठिन है, वह चेष्टा से आरोपित है। एक महावीर की नग्नता रही होगी, जो आनंद से फलित हुई थी। लोग सोचते हैं, महावीर वस्त्र छोड़कर नग्न हो गए थे। वे गलती में हैं। महावीर आनंद को उपलब्ध करके नग्न हो गए थे। एक चित्त की दशा है कि चित्त इतना आनंद से भार जाए, इतना आनंद से भर जाए कि वस्त्र भी भार मालूम होने लगें। और एक अवस्था है कि चित्त इतना निर्दोष हो जाए कि शरीर पर छिपाने के लिए कुछ भी न रह जाए--इसलिए आदमी निर्वस्त्र हो जाए, यह दूसरी बात है। जो आनंद और निर्दोषता से पैदा होती है, वह नग्नता बिल्कुल दूसरी बात है और यह जो अभिनय करके, अयास करके पैदा कर ली जाती है वह बिल्कुल दूसरी बात है। एक आदमी सरल होगा, दूसरा आदमी बिल्कुल जटिल होगा। तो सरलता के संबंध में कुछ बातें स्मरणीय हैं--पहली बात यह कि सरलता थोपी हुई नहीं हो सकती है, उसे ऊपर से थोपा नहीं जा सकता। उसे भीतर से विकसित करना होता है, उसे भीतर से फैलाना होता है। अगर चारों तरफ देखें--पशु सरल हैं, पौधे सरल हैं, लेकिन मनुष्य अकेला जटिल प्राणी है।

क्राइस्ट ने एक गांव से निकलते वक्त अपने मित्रों को कहा, लिली के फूलों की तरफ देखो। वह किस शांति से और ज्ञान से खड़े हैं; बादशाह सोलोमन भी अपनी पूरी गरिमा और गौरव में इतना सुंदर नहीं था। लेकिन फूल कितने सरल हैं, फल सरल हैं, पौधे सरल हैं, पशु-पक्षी सरल हैं। आदमी भर जटिल है। आदमी क्यों जटिल है? इस पूरी पृथ्वी पर आदमी क्यों जटिल है, यह पूछने और विचारने-जैसी बात है। आदमी इसलिए जटिल है कि वह अपने सामने होने के आदर्श, आइडियल खड़ा कर लेता है और उनके होने के पीछे लग जाता है। उससे

जटिलता पैदा होती है। जैसे आपने महावीर को देखा है, बुद्ध को देखा है, कृष्ण को देखा है, क्राइस्ट को देखा है, उनके जीवन को दो है, उनके सत्य को देखा है, उनकी शांति को देखा है। आप सबके मन मग लोभ पैदा होती है--वैसी शांति हो, वैसा सत्य हो, वैसा आलोक हो, वैसा जीवन हो। आप भी उन जैसे होने में लग जाते हैं। आप भी चाहते हैं, मैं भी उन जैसा हो जाऊं। एक आदर्श खड़ा कर लेते हैं और फिर उस आदर्श की तरह अपने कोढालने लगते हैं। जो आदमी किसी आदर्श को लेकर अपने कोढालना शुरू कर देता है वह बहुत जटिल हो जाता है। वह इसलिए जटिल हो जाएगा कि इस संसार में दो कंकड़ भी एक-जैसे नहीं होते हैं। दो पत्ते भी एक--जैसे नहीं होते हैं। दो मनुष्य भी एक-जैसे नहीं होते हैं। जब भी कोई आदमी किसी दूसरे आदमी को आदर्श बना लेता है और उसके जैसा होने की चेष्टा में लग जाता है तभी जटिलता शुरू हो जाती है, तभी कठिनाइयां शुरू हो जाती हैं। पूरा इतिहास इस बात का गवाह है कि दूसरा महावीर पैदा नहीं हो सकता, दूसरा बुद्ध पैदा नहीं हो सकता, दूसरा कृष्ण पैदा नहीं हो सकता, दूसरा क्राइस्ट पैदा नहीं होता। लेकिन फिर भी, नहीं मालूम कैसा पागलपन है कि हजारों लोग सोचते हैं कि हम भी उन जैसे हो जाएं! और जब आप उन जैसे होने में लग जाते हैं तो आप अपनी असलियत को दबाते हैं और दूसरे की सुनी हुई असलियत को ओढ़ने लगते हैं। जब भीतर दो आदमी पैदा हो जाते हैं तो जो आप हैं वस्तुतः वह और जो आप होना चाहते हैं कल्पना में, इन दोनों के भीतर कठिनाई, इन दोनों के भीतर तनाव, इन दोनों के भीतर अंतर्द्वंद्व शुरू हो जाता है। तब आप चौबीस घंटे लड़ाई में लग जाते हैं और लड़ाई मनुष्य को जटिल हो जाता है। चौबीस घंटे आप लड़ रहे हज। हर आदमी के दिमाग में शिक्षा ने, संप्रदायों ने और धर्मों ने, तथाकथित उपदेशों ने यह भाव पैदा किया है कि आदर्श बनाओ। यह सबसे बड़ी झूठी बात है और सबसे खतरनाक है कि कोई आदमी केवल वही हो सकता है, जो वह है। कोई दूसरा आदमी नकल नहीं किया जा सकता और न दूसरे आदमी को ओढ़ा जा सकता है। प्रत्येक व्यक्ति के भीतर जो उसकी निजी क्षमता है, वही विकसित हो, यह तो समझ में आता है। लेकिन एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति-जैसा होने की चेष्टा में लग जाए, यह बिल्कुल समझ में आने जैसी बात नहीं है।

महावीर को हुए पच्चीस सौ वर्ष हो गए। इन पच्चीस सौ वर्षों में हजारों लोगों ने महावीर-जैसा नग्न होने का प्रयास किया है। लेकिन उनमें से एक भी महावीर नहीं बन पाया। बुद्ध को हुए पच्चीस सौ वर्ष हो गए। इस बीच लाखों लोगों ने बुद्ध जैसा बनने की चेष्टा की, लेकिन एक भी आदमी बुद्ध नहीं बन पाया। क्या आंखें खोलने को यह बात काफी नहीं है कि कोई मनुष्य किसी दूसरे मनुष्य जैसा नहीं हो सकता है! और यह सौभाग्य की बात है कि कोई मनुष्य किसी दूसरे मनुष्य जैसा नहीं हो सकता है, नहीं तो दुनिया अत्यंत घबराने वाली चीज हो जाए। हर आदमी विविध है, हर आदमी अद्वितीय है, हर आदमी को अपनी गौरव-गरिमा है, हर आदमी के भीतर परमात्मा का अपना वैभव है। अपनी-अपनी निज की वृत्ति के भीतर बैठी हुई आत्मा है, उसकी अपनी क्षमता है, अद्वितीय क्षमता है। कोई मनुष्य न किसी दूसरे से ऊपर है, न नीचे है। न कोई साधारण है, न कोई असाधारण है। सबके भीतर एक ही परमात्मा अनेक रूपों में प्रकट हो रहा है। इसलिए बजाय इसके कि कोई आदमी किसी दूसरे को आदर्श बनाए, यही उचित है कि उसके भीतर जो बैठा है उसे जानने में लगा रहे--बजाय इसके कि उसके बाहर जो दिखाई पड़ रहे हैं उसका अनुकरण करे। अनुकरण जटिलता पैदा करता है। किसी दूसरे का अनुकरण हमेशा जटिलता पैदा करता है। वह ऐसे ही है कि एक ढांचा हम बना लेते हैं और फिर उस ढांचे के अनुसार अपने कोढालना शुरू कर देते हैं।

आदमी को जड़ वस्तु नहीं है। आदमी को पदार्थ नहीं है कि मशीनों में ले जाएं और ढाल दें। कल मैं एक कारखाना देखने गया और वहां हर चीज ढाली जा रही थी, हर चीज बनाई जा रही थी। कारखाने में एक-जैसी

चीजें बनाई जा सकती हैं। क्यों? क्योंकि जो हम बना रहे हैं वह पदार्थ है। लेकिन मनुष्य एक-जैसा नहीं बनाया जा सकता। और जब भी मनुष्य को एक-जैसा बनाने की चेष्टा की जाती है तभी दुनिया में खतरा और सबसे बड़ी बुराइयां पैदा हो जाती हैं। हम इसी कोशिश में लगे हुए हैं कि हम किसी की भांति ढल जाएं एक ढांचे में, एक पैटर्न में, एक सांचे में। हम ढलकर निकल आएं। इससे बड़े दुर्भाग्य की बात और कोई नहीं होगी कि आप सांचे में ढलकर निकलें और कुछ बन जाएं। क्योंकि तब आप मिट्टी होंगे, मनुष्य नहीं होंगे, और तब आप पदार्थ होंगे, परमात्मा नहीं होंगे। चेतना स्वतंत्र है। उसकी अभिव्यक्तियां हमेशा नवीन से नवीन रास्ते खोज लेती हैं और चेतना इतनी स्वतंत्र है कि हमेशा अपना मार्ग बना लेती है। उसकी खूबी किसी सांचे में ढलने में नहीं, बल्कि अत्यंत सहज, स्फूर्त, स्वाभाविकता को उपलब्ध हो जाने में है। स्वतंत्रता को उपलब्ध करना है, किसी पराए रूप के पीछे जाकर अपने को नहीं ढाल लेना है। यह वैसा ही पागलपन है जैसे कोई कपड़े तो पहले बना ले और फिर आदमी को कहे कि अब इन कपड़ों को पहनने के लिए तुमको काट-छांट करेंगे। क्योंकि कपड़े तो तुम्हें पहनने हैं और इसलिए हम तुमको काटेंगे, छाटेंगे और तुम्हें इनके योग्य बनाएंगे। ढांचे हम पहले बना लेते हैं और फिर आदमी को काटते-छांटते हैं। हर आदमी यह कर रहा है। हम सब ढांचे तोड़ दें और अपने भीतर बैठे हुए परमात्मा का अपमान न करें। किसी के पीछे किसी को जाने की कोई जरूरत नहीं। अपने भीतर जाने की जरूरत है। किसी के पीछे जाने से क्या प्रयोजन? और कौन किसके पीछे जा सकता है? कितनी आश्चर्य की बात है कि धार्मिक लोग यह कहते हैं, साधु और संन्यासी यह कहते सुने जाते हैं कि इस संसार में सब अकेले हैं, कोई किसी का नहीं है। वह यह कहते सुने जाते हैं कि मां-बाप नहीं है, भाई-बहन नहीं है, पति-पत्नी नहीं है। कोई किसी का नहीं है, सब अकेले हैं। लेकिन वही लोग यह भी समझते हैं कि राम के पीछे चलो, बुद्ध के पीछे चलो, कृष्ण के पीछे चलो, क्राइस्ट के पीछे चलो, मुहम्मद के पीछे चलो।

जब सभी लोग अकेले हैं तो कोई किसी के पीछे कैसे चल सकता है? हम आदमी जब अकेला है तो अकेला चलेगा। किसी के पीछे कैसे चलेगा? असल में कोई किसी के साथ को ही नहीं सकता और यह बहुत महत्वपूर्ण है। मैं चाहता हूं कि आपके मस्तिष्क से सारे ढांचे टूट जाएं और आप अपनी निज की सरलता को पकड़ने की कोशिश करें, बजाय इसके कि किसी की छाया के पीछे भागें। और छायाएं भी जिंदा नहीं हैं। वे कोई पच्चीस सौ वर्ष पहले विलीन हो गई हैं, कोई दो हजार वर्ष पहले, कोई तीन हजार वर्ष पहले। हम करीब-करीब मुर्दा छायाओं के पीछे भाग रहे हैं और उनके जैसा बनने की कोशिश कर रहे हैं। यह बिल्कुल पागलपन है। इससे बहुत जटिलता और कंपलेक्सिटी पैदा हो जाती है और मनुष्य बड़ी तकलीफ में, बेचैनी में और अंतर्द्वंद्व में पड़ जाता है। फिर बहुत पीड़ा और बहुत परेशानी होती है। क्योंकि जो हम बनाना चाहते हैं वह हम बन नहीं पाते और जो हम हैं उसकी हम फिक्र छोड़ देते हैं। फिर इस कशमकश में, इस संघर्ष में असफलता और विषाद हाथ लगते हैं और अंत में मालूम होता है कि हम हार गए। जीवन व्यर्थ हो गया। हम तो कुछ भी नहीं बन पाए। निश्चित है अगर गुलाब के फूल चमेली के फूल बनने में लग जाएं और चमेली के फूल गुलाब के फूल बनने में लग जाएं, तो मुश्किल खड़ी हो जाएगी। उनके भीतर अंतर्द्वंद्व पैदा हो जाएगा। कृपा करें, गुलाब को गुलाब रहने दें, चमेली को चमेली रहने दें। जो आप हैं, उसको ही जानें और वही हो जाएं। और स्मरण रखें कि जो आप हैं, अपनी वास्तविक सत्ता में, उससे अन्यथा आप कभी नहीं हो सकते हैं। अगर कितनी भी चेष्टा करें तोकेवल एक एक्टिंग, एक अभिनय भर पाएंगे, इससे ज्यादा कुछ नहीं। एक अभिनय मात्र ज्यादा से ज्यादा आप कर पाएंगे। और अभिनय का क्या मूल्य है? अभिनय का कोई भी मूल्य नहीं है।

सरलता का पहला सूत्र है, कृपा करके किसी का अनुगमन न करें और कोई ढांचा न बनाएं। फिर क्या करें? सारे ढांचे अलग कर दें। जो महावीर के भीतर था, जो बुद्ध के भीतर था, जो राम-कृष्ण के भीतर था, वह आपके भीतर है। सब ढांचे अलग कर दें। उसे पहचानें, उसे समझें, उससे संबंधित हों, उसे जगाएं, उसे खड़ा करें, वह जो भीतर मूर्च्छित सोया हुआ मनुष्य पड़ा है उसे होश में भरें और तब आप पाएंगे कि सारी जटिलता क्षीण होने लगती है और अत्यंत सरलता का, अत्यंत सहजता का जन्म शुरू हो जाता है।

यह स्मरण रखें कि जीवन में जितनी कम द्वंद्व, जितना कम संघर्ष जितने कम व्यर्थ के तनाव, व्यर्थ के खंड कम हों, उतनी सरलता उत्पन्न होगी। मनुष्य जितना अखंड हो उतनी सरलता उपलब्ध होती है। हम खंड-खंड है और हम अपनी अखंडता को अपने हाथों से तोड़े हुए हैं। हम अपनी अखंडता को कैसे तोड़ देते हैं? हम अपनी अखंडता का तादात्म्य से, आइडेंटिटी से तोड़ देते हैं।

होता क्या है? मैं एक घर में पैदा हुआ। उस घर के लोगों ने मुझे एक नाम दे दिया और मैंने समझ लिया कि वह नाम मैं हूं। मैंने एक आइडेंटिटी कर ली। मैंने समझ लिया कि यह नाम मैं हूं। फिर मैं कहीं शिक्षित हुआ। फिर मुझे कोई उपाधि मिल गई। फिर मैंने उन उपाधियों को समझ लिया कि ये उपाधियां मैं हूं। फिर किसी ने मुझे प्रेम किया, तो मैंने समझ लिया कि लोग मुझे प्रेम करते हैं और वह प्रेम की एक तस्वीर मैंने बना ली और समझा कि यह मैं हूं। फिर किसी ने ग्रहण किया, अपमानित किया, सम्मानित किया तो मैंने वह तस्वीर बना ली। ऐसी बहुत सी तस्वीरें आपके चित्त के अलबम पर आपकी ही लगती चली जाती हैं और हर तस्वीर को आप समझ लेते हैं कि मैं हूं। इन तस्वीरों में बड़ा विरोध होता है। ये तस्वीरें बहुत प्रकार की हैं। अनेकों रूपों की हैं। इन तस्वीरों को, यह समझकर कि मैं हूं, आप अनेक रूपों में विभक्त हो जाते हैं।

एक और बात मुझे स्मरण आती है। एक गांव से क्राइस्ट निकले और एक आदमी ने आकर उनका पैर छुआ। उस आदमी ने पूछा--क्या मैं भी ईश्वर को पा सकता हूं? क्राइस्ट ने कहा कि इसके पहले कि तुम ईश्वर को पा सको, मैं तुमसे पूछूं कि तुम्हारा नाम क्या है? उस आदमी ने आंखें नीचे झुका लीं और कहा मेरा नाम? क्या बताऊं अपना नाम? मेरे तो हजार नाम हैं। कौन-सा नाम बताऊं? मैं तो हजार-हजार आदमी एक ही साथ हूं। जब घृणा करता हूं तो दूसरा आदमी हो जाता हूं। जब प्रेम करता हूं तो बिल्कुल दूसरा आदमी हो जाता हूं। जब रोष और क्रोध से भरता हूं तो बिल्कुल दूसरा आदमी हो जाता हूं। और जब क्षमा से भरता हूं तो बिल्कुल दूसरा आदमी हो जाता हूं। अपने बच्चों में मैं दूसरा आदमी हूं। अपने शत्रुओं में मैं दूसरा आदमी हूं। मित्रों में दूसरा हूं। अपरिचितों में दूसरा हूं। मेरे तो हजार नाम है। मैं कौन-सा नाम बताऊं?

यह हम आदमी की तस्वीर है। आपके नाम भी ऐसे ही हैं। आपके नाम भी हजार हैं। आप हजार टुकड़ों में बंटे हुए हैं। आप एक आदमी नहीं हैं। और जो एक आदमी नहीं है वह सरल कैसे होगा? उसके भीतर तो भीड़ है। हर आदमी एक क्राउड है। यह भीड़ बाहर नहीं है आपके भीतर हैं। तो आप में कई आदमी बैठे हुए हैं एक ही साथ। एक ही साथ कई आदमी आपके भीतर बैठे हुए हैं। ख्याल करें, अपने चेहरे को पहचानें। सुबह से उठते हैं तो सांझ तक क्या आपका चेहरा एक ही रहता है? जब आप घर से बाहर निकलते हैं और रास्ते पर एक भिखमंगा भीख मांगता है तब और जब आप बाजार में पहुंचते हैं और कोई आदमी आपको नमस्कार करता है तब, और जब आप दुकान पर बैठते हैं तब, जब आप अपनी पत्नी के पास होते हैं तब, जब आप अपने बच्चों के पास होते हैं तब, क्या आपका चेहरा एक ही है? अगर आपके चेहरे अनेक हैं तो आप सरल नहीं हो सकते, आप जटिलता खड़ी कर लेंगे, बहुत जटिल हो जाएंगे। कैसे सरल हो सकते हैं, अगर एक ही आदमी के अंदर दस-पंद्रह रहते हों?

हत्यारों ने जिन्होंने बड़ी हत्याएं की हैं, अनेकों ने यह कहा है कि हमें पता नहीं कि हमने हत्या भी की है। पहले तो लोग समझते थे कि ये लोग झूठ बोल रहे हैं, लेकिन अब मनोविज्ञान इस नतीजे पर पहुंचा है कि वे ठीक कह रहे हैं। उनके व्यक्तित्व इतने खंडित है कि जिस आदमी ने हत्या की है वह वह आदमी नहीं है, जो अदालत में बयान दे रहा है। वह दूसरा आदमी है। यह बिल्कुल दूसरा चेहरा है, उसे याद भी नहीं कि मैंने हत्या की है। इतने खंड हो गे हैं भीतर कि दूसरे खंड ने यह काम किया है, इस खंड को पता भी नहीं। और आपके भीतर भी ऐसे बहुत से खंड हैं। नहीं लगता, क्रोध करने के बाद क्या आप नहीं कहते कि मैंने अपने बावजूद क्रोध किया। अजीब बात है, आपके बावजूद! मतलब--आपके भीतर कोई दूसरा आदमी भी है। आप नहीं चाहते थे कि क्रोध हो और उसने क्रोध करवा दिया। कई बार आप अनुभव करते हैं कि मैं नहीं करना था, फिर मैंने किया। फिर कौन करवा देता है? जरूर आपके भीतर कोई दूसरे लोग हैं। आप नहीं चाहते हैं फिर भी आपसे हो जाता है। हजार बार निर्णय करते हैं कि अब ऐसा नहीं करेंगे, फिर भी कर लेते हैं और पछताते हैं।

असल में आपके भीतर बहुत-से लोग हैं। जिसने निर्णय किया था कि नहीं करेंगे और जिसने किया, उन दोनों को पता नहीं कि बीच में कोई और बातचीत है। उन दोनों के बीच कोई संबंध नहीं है। सांझ को आप तय करके सोते हैं कि सुबह पांच बजे उठेंगे और सुबह पांच बजे आपके भीतर कोई कहता है कि रहने भी दो। आप सो जाते हैं। सुबह आप पछताते हैं कि मैंने तय किया था कि उठना है फिर मैं उठा क्यों नहीं? अगर आपने ही तय किया था कि उठना है और आप एक व्यक्त होते, तो सुबह पांच बजे कौन कह सकता था कि मत उठो? लेकिन आपके भीतर और व्यक्ति बैठे हुए हैं और वे कहते हैं--रहने दो, चलने दो।

महावीर ने कहा है कि मनुष्य बहुचित्तवान है। एक चित्त नहीं है, आपके भीतर बहुचित्त हैं। और जिसके भीतर बहुत चित्त है वह कभी सरल होगा? सरल हो ही नहीं सकता। उसके भीतर कई आवाजें हैं। एक आवाज कुछ कहती है, दूसरी आवाज कुछ कहती है। कभी सोचें आप, अपने भीतर आवाजों को सुनें। आपको बहुत आवाजें सुनाई पड़ेंगी। आपको लगेगा, आप बहुत आदमियों से घिरे हुए हैं। एक चित्तता कैसे आएगी? आप जिन तादात्म्य को बना लेते हैं उनको तोड़ने से एक चित्तता आएगी।

एक भारतीय साधु सारी दुनिया की यात्रा करके वापस लौटा था। वह भारत आया और हिमालय की एक छोटी-सी रियासत में मेहमान हुआ। उस रियासत के राजा ने साधु के पास जाकर कहा, "मैं ईश्वर से मिलना चाहता हूं। मैंने बहुत-से लोगों के प्रवचन सुने हैं, बहुत-सी बातें सुनी हैं, सब मुझे बकवास मालूम होती है। मुझे नहीं मालूम होता है कि ईश्वर है और जब भी साधु-संन्यासी मेरे गांव में आते हैं, तब उनके पास जाता हूं और उनसे पूछता हूं। अब मैं इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि ईश्वर के संबंध में मुझे कोई व्याख्यान नहीं सुनने हैं, मैंने काफी सुन लिए हैं। तो आपसे यह पूछने आया हूं कि अगर ईश्वर है, तो मुझे मिला सकते हैं?" वह संन्यासी बैठा चुपचाप सुन रहा था। वह बोला--"अभी मिलना है या थोड़ी देर ठहर सकते हो?" राजा एकदम अवाक हो गया। उसको आशा नहीं थी कि कोई आदमी कहेगा कि अभी मिलना चाहते हैं कि थोड़ी देर ठहर सकते हैं। राजा ने समझा कि समझने में भूल हो गई होगी। संन्यासी कुछ गलत समझ गया है। राजा ने दुबारा कहा--"शायद आप ने ठीक से नहीं समझा। मैं ईश्वर की बात कर रहा हूं, परमेश्वर की।" संन्यासी ने कहा--"मैं तो उसके सिवा किसी की बात ही नहीं करता। अभी मिलना है कि थोड़ी देर रुक सकते हैं?" उस राजा ने कभी नहीं सोचा था कि वह ऐसा पूछेगा, तो क्या उत्तर दूंगा? उसने कहा--"आप कहते हैं तो मैं अभी ही मिलना चाहता हूं।" संन्यासी ने कहा, "तो एक काम करें; यह कागज है, इस पर थोड़ा-सा लिख दूं कि आप कौन हैं, ताकि परमात्मा तक खबर भेज दूं। क्योंकि यह तो आप मानेंगे ही कि जो आपसे भी कोई मिलने आता है, तो आप पूछ लेते हैं कौन है, क्या

है?" राजा ने कहा, "यह तो ठीक है। यह तो नियमबद्ध है। उसने अपने राज्य और भवन का पता उस संन्यासी को दिया। वह संन्यासी हंसने लगा और उसने कहा--"दो-तीन बातें पूछनी जरूरी हो गई। इस कागज में जो भी आपने लिखा है, सब असत्य है।" तब राजा बोला--"असत्य! आप क्या पागलपन की बात कर रहे हैं! मैं राजा हूं और जो नाम मैंने लिखा है वही मेरा नाम है।" संन्यासी ने कहा, "मुझे तो बिल्कुल ही असत्य मालूम होता है। आप न राजा है और न आपने जो नाम लिखा है वह आपका है।" वह राजा बोला--"आप अजीब आदमी मालूम होते हैं। पहले तो आपने कहा कि ईश्वर से अभी मिला दूंगा। वह भी मुझे पागलपन की बात मालूम पड़ी। और दूसरे यह कि अब मैं कह रहा हूं कि मैं इस क्षेत्र का राजा हूं, मेरा यह नाम है तो उससे इंकार करते हैं।" संन्यासी ने कहा--"थोड़ा सोचें। अगर आपका नाम दूसरा हो तो क्या फर्क पड़ जाएगा? आपके मां-बाप ने "आ" नाम दे दिया और यदि मैं "बा" नाम दे देता, तो क्या फर्क पड़ जाता? आप जो थे, वही रहते कि बदल जाते? आपको अगर हम दूसरा नाम दे दें तो आप बदल जाएंगे?" उस राजा ने कहा--"नाम बदलने से मैं कैसे बदलूंगा?" संन्यासी ने कहा--"जिस नाम के बदलने से आप नहीं बदलते, निश्चित ही नाम कुछ और है, आप कुछ और हैं। आज आप उस नाम से अलग हैं और फिर आप राजा है, कल अगर इसी गांव में भिखारी हो जाएं तो बदल जाएंगे? फिर आप आप नहीं रहेंगे?" राजा बोला--"मैं तो फिर भी रहूंगा। राज्य नहीं रहेगा, धन नहीं रहेगा, राजा नहीं रहेंगे, भिखारी हो जाऊंगा, मेरे पास कुछ नहीं रहेगा, लेकिन मैं तो जो हूं वही रहूंगा।" संन्यासी बोला, "फिर राजा होने का कोई मतलब नहीं रहा। फिर आपकी सत्ता से उसका कोई संबंध नहीं। वह तो ऊपरी खोल है, बदल जाए तो भी नहीं बदलेंगे। यह कपड़े मैं पहने हूं तो मैं यह थोड़ा कहूंगा कि यह कपड़ा मैं हूं। क्यों नहीं कहूंगा? क्योंकि कपड़े दूसरे पहन लूं तब भी मैं ही बना रहूंगा।" संन्यासी ने कहा--"फिर राजा होने से कोई फर्क नहीं पड़ता। यह आपका परिचय नहीं हुआ, क्योंकि जो परिचय आपने दिया है उसके बदल जाने पर भी आप नहीं बदलते हैं। अतः आपका परिचय कुछ और होना चाहिए, जिसके बदलने पर आप न बदल जाएं, वही आप हो सकते हैं। और जब तक आप वह परिचय न देंगे तो मैं कैसे परमात्मा को कहूं कि कौन मिलने आया है, किसको मिलाऊं? परमात्मा तो मौजूद है, लेकिन मिलाऊं किसको? मिलनेवाला मौजूद नहीं है। क्योंकि मिलनेवाला बंटा है बहुत--से टुकड़ों में, खंडों में। वह इकट्ठा नहीं है, वह राजी नहीं है, वह खड़ा नहीं है। कौन है जो मिलना चाहता है? आप ईश्वर को खोजते हैं लेकिन कौन हैं आप? अपने खंडों को इकट्ठा करना होगा। कैसे वे खंड इकट्ठे होंगे, क्योंकि अगर सच में खंड हो गए हैं तो कैसे इकट्ठे होंगे? कितने ही उनको पास लाएंगे तब भी वे खंड बने रहेंगे। अगर सच में खंड हो जाए तो फिर अखंड नहीं हो सकते। क्योंकि खंडों को कितने ही करीब लाओ उनके बीच फिर भी फासला बना रहेगा। वैज्ञानिक कहते हैं कि दो अंगों को कितने ही करीब लाओ, फिर भी फासला दोनों के बीच बना ही रहेगा। यह ठीक ही कहते हैं, क्योंकि कितने ही करीब लाओ, बीच में फासला होगा ही। यदि नहीं तो दोनों एक ही हो जाएंगे अगर फासला नहीं रहेगा। तो खंडों को कितने ही करीब लाओ अखंड नहीं बना सकते हैं, खंडों का जोड़ ही होगा।"

इसका अर्थ है कि आप अखंड है। खंड होना आपका भ्रम है। भ्रम टूट सकता है और आप इसी क्षण अखंडता को पा सकते हैं। आप खंडित हो नहीं गए हैं, खंडित मालूम हो रहे हैं। मैं एक पहाड़ पर गया था और वहां एक महल में लोग मुझे ले गए थे। मैं एक बड़ा गुंबज था और उस गुंबज में कांच के छोटे-छोटे लाखों टुकड़े लगे थे। मैं वहां खड़ा हुआ। मुझे लाखों अपनी तस्वीरें दिखाई पड़ने लगीं, टुकड़े-टुकड़े। और फिर हमने वहां दीया जलाया तो लाख दीए जलने लगे--कांच के टुकड़े-टुकड़े में। अब अगर उस दीए को न देखूं जिसको हाथ में लिए हूं और

उन कांच पर प्रतिबिंबित हजारों दीयों को देखूंगा तो मैं समझूंगा कि इस भवन में लाखों दीए जल रहे हैं और अगर मैं हाथ के दीए को देखूं तो मैं पाऊंगा कि एक ही दीया जल रहा है।

अगर मैं अपने को भूल जाऊंगा तो मैं देखूंगा कि हजार-हजार लोग कमरे में मौजूद हैं और मैं अपने को देखूं तो पाऊंगा कि एक ही मौजूद है। फर्क आप समझ रहे हैं? जो व्यक्ति अपने अनुभव के दर्पण में, अपनी रोजमर्रा की जिंदगी के दर्पण में, क्षण-क्षण प्रवाही जीवन के दर्पण में, अपनी तस्वीर को देखता है उसे हजार-हजार टुकड़े खुद के मालूम होते हैं। और अगर वह उनको न देखे, उसको देखे जो पीछे बैठा है, सबके अनुभवों में नहीं अनुभोक्ता में, दृश्यों में नहीं द्रष्टा में, जो चारों तरफ घटित हो रहा है उसमें नहीं जिसके ऊपर घटित हो रहा है उसमें, तो पाएंगे एक है और वहां अखंड है। चित्त अनेक हैं, चेतना एक है। चित्त प्रतिफलित है, चेतना एक है। जिसका प्रतिफलन है उसे पकड़ना होगा। अगर उसे पकड़ने में हम समर्थ हो जाएं तो जीवन एकदम सरल हो जाएगा। अखंड जीवन की सरल जीवन है। समग्र--"इंटीग्रेटेड"--जीवन ही सरल जीवन है। इसे पहचानने का रास्ता होगा--दूसरा सूत्र, जिसे मैं सजगता कह रहा हूं। सजगता का अर्थ है--"अवेयरनेस, होश, भान, आत्मभान। जिस व्यक्ति का आत्मभान जितना जाग्रत होगा वह उतना ही सरल और अखंड हो जाएगा। आत्मभान का क्या अर्थ है? होश का क्या अर्थ है? आत्मभान, या अमूर्च्छा या, अप्रमाद का अर्थ है--जीवन के जितने भी अनुभव हैं उनके साथ एक न हो जो उनसे दूर बने रहें, उनके द्रष्टा बने रहें। जैसे मैं इस भवन में बैठा हूं। प्रकाश जला दिया जाए तो भवन में प्रकाश भर जाएगा। प्रकाश मुझे घेर लेगा। दो भूलें मैं कर सकता हूं। यह भूल कर सकता हूं कि मैं समझ लूं कि मैं प्रकाश हूं, क्योंकि प्रकाश कमरे में भरा हुआ है। फिर प्रकाश बुझा दिया जाए तो अंधकार आ जाएगा। फिर मैं यह भूल कर सकता हूं कि मैं अंधकार हूं। यह भूल है, क्यों? क्योंकि प्रकाश आया तब भी मैं यहां था। प्रकाश चला गया तब भी मैं यहां था। अंधकार आया तब भी मैं यहां हूं। अंधकार चला जाए तब भी मैं यहां रहूंगा। तो मेरा जो मैं है, वह न तो प्रकाश है, न अंधकार है। सुख आते हैं, चले जाते हैं। दुःख आते हैं, चले जाते हैं। सम्मान मिलता है, चला जाता है। अपमान मिलता है, चला जाता है। जो आता है और चला जाता है, वह मैं नहीं हो सकता।

तो जीवन के प्रत्येक अनुभव में, घृणा में, अशांति में, शांति में, सुख में, दुःख में, मान में, सम्मान में--यह स्मरण, यह स्मृति कि जो भी घटित हो रहा है वह मैं नहीं हूं, मैं केवल उसका देखनेवाला हूं--मैं देख रहा हूं कि अपमान किया जा रहा है और मैं देख रहा हूं कि जो सम्मान किया जा रहा है, और मैं देख रहा हूं कि दुःख आया और मैं देख रहा हूं कि सुख आया और मैं देखता हूं कि रात हुई और मैं देखता हूं कि दिन हुआ। सूरज उगा और सूरज डूबा। मैं केवल देखनेवाला हूं। मैं केवल साक्षी हूं। जो हो रहा है उससे मेरा इससे ज्यादा कोई संबंध नहीं कि मैं देख रहा हूं। अगर क्रमशः यह स्मृति और यह भान विकसित होने लगा कि मैं देखने वाला हूं तो धीरे-धीरे आप पाएंगे कि आपकी अखंडता आ रही है और खंडता जा रही है। खंड होना बंद हो जाएगा। खंड-खंड वे होते हैं, जो किसी दृश्य को देखते ही उस के साथ एक हो जाते हैं। इसलिए द्रष्टा यदि दृश्य के साथ एक हो जाए तो जीवन खंड हो जाता है। द्रष्टा दृश्य से अलग हो जाए तो जीवन अखंड हो जाता है। सारा योग, सारे धर्म, सारे मार्ग, सारी पद्धतियां जो मनुष्य को परमात्मा तक पहुंचाती हैं, बुनियादी रूप से इस बात पर खड़ी हैं कि मनुष्य अपनी चेतना को साक्षी समझ ले। मनुष्य केवल दर्शक मात्र रह जाए। लेकिन हम तो अजीब पागल लोग हैं। हम तो नाटक देखें या फिल्म देखें वहां भी दृश्य ही रह जाते हैं। वहां भी हम भोक्ता हो जाते हैं। अगर नाटक में कोई दुःख का दृश्य आता है तो हमारी आंखों से आंसू बहने लगता है। हम द्रष्टा नहीं रह गए, हम भोक्ता रह गए। हम सम्मलित हो गए नाटक में। हम नाटक के पात्र हो गए। नाटकगृह में बैठकर ऐसे बहुत कम लोग हैं जो नाटक के

पात्र न हो जाएं। कोई रोने लगता है, कोई हंसने लगता है, कोई दुखी और प्रसन्न हो जाता है। वह जो मंच पर हो रहा है या परदे पर हो रहा है, वहां भी रोना, दुखी होना और पीड़ित होना आपके भीतर शुरू हो जाता है। आपको आदत पड़ी है कि दृश्य के साथ एक हो जाएं। धर्म कहता है कि जीवन का जो दृश्य है वहां भी एक न रह जाएं और हम ऐसे पागल हैं कि नाटक के जो दृश्य होते हैं वहां भी एक हो जाते हैं। जीवन का जो वृहत्तर नाटक चल रहा है वह नाटक से ज्यादा नहीं है। क्यों हम उसे कह रहे हैं कि नाटक से ज्यादा नहीं है? इसलिए नहीं कि उसके मूल्य को कम करना चाहते हैं, बल्कि इसलिए कि उसका जो ठीक-ठीक मूल्य है वही आंकना चाहते हैं।

सुबह में जागता हूं तो जो देखता हूं वह सच मालूम होने लगता है। और रात में सोता हूं तो जो सपना होता है वह सच मालूम होने लगता है। सपने में जाते हैं तो संसार झूठा हो जाता है। सब भूल जाता हूं, कुछ याद नहीं रहता। और सपने के बाहर आते हैं, तो संसार सच हो जाता है और सपना झूठा हो जाता है। इसलिए जो जानते हैं, वह इस यात्रा में एक सपने में दूसरे सपने में आते हैं और फिर मृत्यु में सब सपना हो जाता है। अभी पीछे उलटकर देखें अपने जीवन को, तो जो जाना था और देखा था, क्या ठीक-ठीक याद पड़ते हैं कि वह सपने में देख रहा था या सच में देख रहा था? सिवा स्मृति के और क्या निशान रह गए हैं? पीछे लौटकर अगर कोई मृत्यु के कगार पर देखे तो क्या उसे याद पड़ेगा कि जो मैंने जीवन में जाना वह सब था या सपना था क्योंकि निशान कहां है? केवल स्मृति में रह गए हैं। सपना भी स्मृति में निशान छोड़ जाता है और संसार भी, और अगर स्मृति पहचान भी जाए तो दोनों मिट जाएंगे।

एक आदमी टेन से गिर पड़ा था। टेन से गिरते ही उसकी स्मृति विलीन हो गई। फिर उसने पहचानन बंद कर दिया था--कौन उसकी पत्नी है, कौन उसका पिता है। मैं उससे मिलने गया तो वह मुझे नहीं पहचान सका। क्या हो गया? स्मृति विलीन हो गई। उसे सपने भी भूल गए, जो उसने पहले देखे थे। और वह जिंदगी भी भूल गई जो देखी थी; जिसकी रेखाएं केवल स्मृति पर रह जाती हैं। और स्मृति के समीप पहुंचने से जिसका सब मिट जाए उसे सपने से ज्यादा क्या कहेंगे? जो केवल स्मृति में है उसे सपने से ज्यादा और कहने का प्रयोजन क्या है? और मौत सब स्मृति को पोंछ देती है और सब जो जाना था, जो जीया था वह सपना हो जाता है। यह जो जगत का बड़ा सपना है, इस सपने के प्रति बोध और सजगता चाहिए। यह जानना कि जो मैं देख रहा हूं, वह दृश्य है और मैं अलग हूं, मैं पृथक और भिन्न हूं। सुबह से शाम तक उठते-बैठते, सदा जागते, बोलते, चुप रहते, खाते-पीते, चलते-फिरते हर वक्त धीमे-धीमे इस स्मरण को गहरा करना होगा कि मैं अलग हूं। जो हो रहा है वह अलग है। धीरे-धीरे वह घड़ी आए, जब आप अपने भीतर एक अलग चेतना की ज्योति का अनुभव करेंगे जो सारे अनुभवों से पृथक है, और तब जीवन एकदम सरल हो जाएगा। तब आप पाएंगे, आप एकदम सरल हो गए हैं, एकदम "इनोसेंट"--जैसे छोटे बच्चे। और छोटा बच्चा हुए बिना कोई उपलब्धि नहीं है। बूढ़े जब बच्चे हो जाते हैं तभी वे परमात्मा को पा लेते हैं। इतनी सरलता सजगता से उत्पन्न हो सकती है।

दूसरा सूत्र है सजगता और तीसरा सूत्र है शून्यता। जितना शून्य होंगे उतनी सजगता गहरी होगी। मैंने कहा कि सरलता उत्पन्न होती है सजगता से और सजगता उत्पन्न होती है शून्यता से। शून्यता चरम बिंदु है। शून्यता साधना का केंद्र-बिंदु है। शून्य हो जाएं। शून्य होने का मतलब है जो हो रहा है चारों तरफ, उसके प्रति मरना सीखें।

एक छोटी-सी कहानी कहूं तोशायद समझ में आ जाए। जापान में एक संन्यासी हुआ। एक ऐसा दरिद्र भिखारी, जो टोकियो राजधानी में एक नीम के झाड़ के नीचे पड़ा रहता था। वर्ष ओ और गए, वहीं पड़ा रहा।

लाखों हजारों लोग उसे मानते थे और श्रद्धा देते थे। स्वयं बादशाह भी उसे श्रद्धा और आदर करता था। एक दिन बादशाह आया और उसके चरण छुए और कहा कि कृपा करें, मेरे महल में चलें। यहां पड़े रहने से क्या? बरसात भी है, शरीर आपका वृद्ध हो गया है, धूप आती है, तकलीफ होती है, सर्दी आती है। मुझ पर कृपा करें और तुरंत मेरे महल में चलें। साधु ने अपनी चटाई लपेटी और खड़ा हो गया। राजा बहुत हैरान हुआ। साधु इतना जल्दी तैयार हो गया! कैसा साधु है, कैसा संन्यासी है? एक दफा भी ऐसा नहीं कहा कि यह संसार सब माया है, महल में क्या लेना-देना है। हमने तो लात मार दी। हम तोझोपड़े में रहनेवाले फकीर हैं, हम तो मग्न रहते हैं, हमको क्या मतलब? ऐसा कहता तो मालूम पड़ता कि संन्यासी है। और जिन-जिन को संन्यासी मालूम पड़ना हो, उन को ऐसा कहना पड़ता है। वह संन्यासी तो खड़ा हो गया। उसने कहा, महाराज, चलें। वह तो आगे हो गया और बादशाह बहुत चिंतित हुआ। बड़े उत्साह से लेने गया था, लेकिन चित्त एकदम फीका हो गया कि किसा आदमी को ले जा रहा हूं। यह भी गलती हो गई। यह तोधोखा हो गया। लेकिन जब खुद ही आमंत्रण दिया था, खुद को बुलाया था इसलिए इंकार भी बीच रास्ते में कैसे करे। महल में ले गया, बड़ी अच्छी व्यवस्था उसकी की थी। जो राजा की व्यवस्था थी, वैसी व्यवस्था उसकी थी। लेकिन प्रति क्षण संदेह बढ़ने लगा। जो जो दिया, उसने स्वीकार कर लिया और जोशाही बिस्तरे दिए उन पर सो गया। नौकर--चाकर दिए, उनकी सेवाएं उसने अंगीकार कर लीं। राजा तो हैरान हुआ कि यह आदमी कैसा है? यह तो बिल्कुल ही गलत आदमी मालूम होता है। क्या यह उसकी प्रतीक्षा में ही बैठा हुआ था? क्या सब ढोंग था, धोखा था? यह सारी फकीरी क्या बरसों से प्रतीक्षा कर रही थी कि राजा कब आमंत्रण दे और मैं चलूं। रात मुश्किल से बीती। संन्यासी तो मजे से सोया पर राजा नहीं जो सका। सुबह होते ही राजा ने कहा कि संत जी, बड़ी शंका मन में उठी है। जब तक निवारण न हो, मैं बड़ी दिक्कत में पड़ गया हूं। एक शंका उठी है, उसे प्रकट करने की आज्ञा दें। संन्यासी हंसने लगा। उसने कहा--तुम्हें शंका अब प्रकट हुई? मुझे वहीं हो गई थी। जैसे ही मैं खड़ा हुआ, मैं समझा तुमने निमंत्रण वापस ले लिया। फिर तो मजबूरी से यहां तक ले आए हो। पूछ लो, शंका का निवारण कर लो। राजा ने कहा कि रात मैं यही सोचता रहा कि आप कैसे संन्यासी हैं? संन्यासी ने कहा कि थोड़ा एकांत होगा तो सरलता होगी बतलाने में। राजा ने कहा भेद तो जानना ही है। मुझमें और आपमें क्या भेद रहा, इस रात? कल तक तो भेद था। आप नीम के नीचे थे, भिखारी थे, भिखमंगे थे। खोने के बर्तन को सिर के नीचे रखकर सो जाते थे। मैं महल में था तो राजा था, आप भिखमंगे थे कल तक--तो बहुत भेद था। आप संन्यासी थे, मैं भोगी था। लेकिन आज रात कोई भेद मुझे दिखाई नहीं पड़ता। संन्यासी खूब हंसने लगा। और कोई भी संन्यासी हंसेगा, क्योंकि अगर भेद इतना ही है कि एक के पास बहुत बिस्तर हैं और एक के पास बहुत बिस्तर नहीं हैं; एक दरख्त के नीचे सोता है और एक महलों में। अगर भेद इतना ही हो, तो संन्यास और संसार में तो भेद किस मूल्य का हुआ? कोई भेद है ही नहीं।

संन्यासी बहुत हंसा। उसने कहा कि गांव के बाहर चलें। वे दोनों गांव के बाहर गए। बार-बार थोड़ी-थोड़ी दूर पर राजा पूछने लगा, उत्तर दे दें। अब तो गांव के बाहर आ गए। संन्यासी ने कहा, थोड़ा और आगे, थोड़ा और आगे। दोपहर हो गई। सूरज ऊपर आ गया तो राजा ने कहा--क्या कर रहे हैं! आपको उत्तर देना है कि नहीं? यह और आगे से क्या मतलब होगा? संन्यासी ने कहा, और आगे ही उसका उत्तर है। अब मैं आगे ही जाऊंगा, पीछे नहीं लौटूंगा। आप भी मेरे साथ चलते हैं। राजा ने कहा--मैं कैसे चल सकता हूं? पीछे मेरा महल, मेरा राज्य है। संन्यासी ने कहा--पीछे न मेरा महल है न मेरा राज्य है और इतना ही भेद है। जब रात तुम्हारे भवन में मैं सोया तो मैं बिल्कुल उतना ही शून्य था जितना जब मैं नीम के नीचे सोता था। इतना ही भेद है। उसे स्मरण रखें, इसे हृदय के किसी कोने में बैठ जाने दें। इतना ही भेद है कि जब तुम्हारे महल में सोया तो उतना

ही शून्य था जितना तब जब मैं रोज नीम के नीचे सोता था। मेरी शून्यता वही थी, वही भेद था, तुम्हारे भीतर शून्यता नहीं है। जो तुम्हारे पास आता है उसी से तुम भर जाते हो। महल से भरे हुए हो। तुम कहते हो पीछे मेरा महल है, तुम कहते हो पीछे मेरा राज्य है। तुम जब मरोगे तब भी कहोगे कि पीछे मेरा सब कुछ गया। तुम रोते हो कि कहां मुझे लिए जा रहे हैं। और मैं जब मरूंगा तो ऐसा ही चला जाऊंगा आगे, क्योंकि मेरे पीछे कुछ भी नहीं है। पीछे वही है जो भीतर हो और जो भीतर न हो वह पीछे भी नहीं है। बाहर भी वही है जो भीतर हो। जो भीतर न हो बाहर भी कुछ नहीं है। जोशून्य हो जाते हैं, उनके लिए संसार मोक्ष हो जाता है। जोशून्य हो जाते हैं उनके लिए संसार परमात्मा हो जाता है। जोशून्य हो जाते हैं उनके लिए यहीं सब कुछ उतर आता है, जिसकी आपको तलाश है और खोज है। लेकिन शून्य हो जाना जरूरी है। क्यों? क्योंकि जब वर्षा का पानी गिरता है और आकाश में मेघ इकट्ठे होते हैं और बूंदें बरसती हैं तो वह पानी की बूंदें टीलों पर या पहाड़ों पर इकट्ठी नहीं होती हैं, गड्ढों में इकट्ठी हो जाती हैं। जो टीले के की भांति हैं, जिनका अहंकार उठा हुआ है, उन पर पानी तो गिरेगा लेकिन बहकर नीचे निकल जाएगा, इकट्ठा नहीं होगा। और जो गड्ढों की भांति खाली और शून्य हैं उनमें भर जाएगा। जोशून्य है, वह ग्रहण करता है परमात्मा को और जो भरा है संसार से वह इंकार कर देता है, अस्वीकार कर देता है।

द्वार खोलना है तोशून्य हो जाएं, भीतर से बिल्कुल खाली हो जाएं। जैसे वहां कुछ न हो। सामान वहां इकट्ठा न करें, फर्नीचर अपने घर में लाएं और अपने भीतर न लाएं, चीजें अपने बाहर लाएं लेकिन भीतर न लाएं। बाहर सब होने दें लेकिन भीतर खाली रहने दें। रोज सांझ को जो इकट्ठा किया उसे बाहर कर दें। झाड़ लें अपने को, बिल्कुल साफ कर लें अपने को।

एक संन्यासी ने अपने शिष्य को एक दिन कहा कि तू बहुत दिन मेरे पास रहा है। जब मैं तुझे कहीं और भेजा हूं ताकि मैंने तुझसे जो कहा है वह और ठीक से समझ ले। तो उसको एक दूसरे संन्यासी के पास भेजा कि तू जा और उसे पास रह और उसकी जीवनचर्या को देख। वह वहां गया। सुबह से शाम तक उसने दिनचर्या को देखा। उसमें कुछ भी नहीं था। वह संन्यासी एक छोटी-सी सराय का रखवाला था। वह संन्यासी भी नहीं था। साधारण कपड़े पहनता था लेकिन उसके गुरु ने उसे वहां भेजा, तोगया। वह सुबह से शाम तक देखता रहा, वहां तो कुछ भी नहीं था। वह आदमी है, रखवाला है, रखवाली करता है। सराय को साफ करता है। मेहमान ठहरते हैं, उनके कमरे साफ करता है। मेहमान जाते हैं, उनके कमरे साफ करता है। उसने दो-चार दिन देखा तो ऊब गया। वहां तो कोई बात ही नहीं थी, चर्या की कोई बात ही नहीं थी। चलते वक्त उसने कहा, सब देख लिया जिसके लिए मेरे गुरु ने भेजा था। सिर्फ दो बातें मैं नहीं देख पाया हूंः रात को सोते समय आप क्या करते हैं, वह मुझे पता नहीं है और सुबह उठते वक्त आप क्या करते हैं, वह मुझे पता नहीं। यह मुझे बता दें। मैं वापस लौट जाऊं। संन्यासी ने कहा, कुछ नहीं करता। दिन भर मैं सराय के जो बर्तन गंदे हो जाते हैं रात में उनको साफ करके रख देता हूं और सुबह जब उठता हूं तो रात भर में उन पर थोड़ी बहुत धूल जम जाती है तो उन्हें मैं फिर पोंछ देता हूं। बस इससे ज्यादा कुछ नहीं करता।

शिष्य ने वापस लौटकर गुरु से कहा, कहां तुमने मुझे भेज दिया, एक साधारण सराय के रखवाले के पास! उस नासमझ से मैंने पूछा, तो न तो वह प्रार्थना करता है न ध्यान, न कुछ। वह मुझसे बोला, रात बर्तन साफ कर देता हूं, जो दिन भर गंदे हो जाते हैं। और सुबह थोड़ी धूल जम जाती है तो फिर उसे पोंछ देता हूं। उसके गुरु ने कहा--कह दिया उसने। जो कहने जैसा था, उसने कह दिया। सारा ध्यान, सारी समाधि, सब कह दिया। तू समझा नहीं। दिन भर बर्तन गंदे हो जाते हैं, सांझ को उन्हें पोंछकर साह कर दो। रात भर में सपनों की थोड़ी

धूल फिर जम जाएगी, सुबह में फिर पोंछ डालो और खाली हो जाओ। मरते जाएं, रोज, रोज धूल को इकट्ठी न करें। रोज मर जाएं, सांझ को मर जाएं। जो हो गया उसे प्रति मर जाएं। वह जो बीत गया उसके लिए बीत जाने दें और मर जाएं। उसे छोड़ दें। वह स्मृति से ज्यादा कुछ भी नहीं। उस कचरे को अलग करें। शांत हो जाएं, चुप हो जाएं, शून्य हो जाएं। सुबह उठें जैसे कोई शून्य उठा हो, जिसका कोई आगा-पीछा नहीं है। दिन भर ऐसे जीएं जैसे सब शून्य है। बाहर सब हो रहा है, भीतर सब शून्य है। अगर सतत इस शून्य का भीतर स्मरण हो तो धीरे-धीरे वह गड्ढा तैयार हो जाता है, जिसमें परमात्मा का अवतरण होता है और अमृत की वर्षा होती है। खाली हो जाएं--परमात्मा आपको भर देगा। इसके सिवा और कोई महत्वपूर्ण बात नहीं है। खाली हो जाएं--परमात्मा आपको भर देगा। भर जाएं--परमात्मा आपको खाली कर देगा।

मैंने तीन छोटे से सूत्र कहे--सरलता, सजगता और शून्यता। जो इन तीन को साथ ले, वह उस परमानंद को उपलब्ध हो जाता है जिसकी हमने बातें सुनी हैं लेकिन जिसका हमें कोई अनुभव नहीं है। वही हम करें, जो अभी सुना है, जो अभी औरों से सुना है। जिसकी खबरें बुद्ध, महावीर, कृष्ण और राम से सुनी हैं, क्राइस्ट और मुहम्मद, मीरा और कबीर ने जिसके गीत गाए हैं। उन्होंने इसको जैसा जाना है, वैसा कहा है, वैसा ही जानना आपका भी हो सके। धर्म आपका मानना न रहे, धर्म आपका जानना हो जाए। मानने का कोई मूल्य नहीं है, मानना बिल्कुल ही व्यर्थ है। जानने का मूल्य है। धर्म आपका अपना जानना, अपनी अनुभूति, अपना प्रत्यक्ष, अपना साक्षात हो जाए, यही प्रभु से कामना करता हूं। और यदि आप तैयार हों तो कल तक रुकने की भी कोई जरूरत नहीं है। जो मिटने को तैयार वह अभी पा लेता है। बूंद जब सागर में अपने को खोने में राजी हो जाती है, तो सागर हो जाती है। ईश्वर करे, आपकी बूंद सागर में खो जाए और आप भी उसे जान सकें जिसे जान लेना सब कुछ है, जिसे पा लेना सब कुछ है और जिसके बिना सब कुछ अभाव है, जिसे पा लेने से सब कुछ मिल जाता है--आनंद, शांति, शून्य, प्रेम!

दूसरा प्रवचन

जीवन और मृत्यु

सारे मनुष्य का अनुभव शरीर का अनुभव है, सारे योगी का अनुभव सूक्ष्म शरीर का अनुभव है, परम योगी का अनुभव परमात्मा का अनुभव है। परमात्मा एक है, सूक्ष्म शरीर अनंत है, थ्रूल शरीर अनंत है। वह जो सूक्ष्म है वह नए स्थूल शरीर ग्रहण करता है। हम यहां देख रहे हैं कि बहुत से बल्ब जले हुए हैं। विद्युत तो एक है, विद्युत बहुत नहीं है। वह ऊर्जा, वह शक्ति वह इनर्जी एक है लेकिन दो अलग बल्बों से वह प्रकट हो रही है। बल्ब का शरीर अलग-अलग है, उसकी आत्मा एक है। हमारे भीतर से जो चेतना झांक रही है वह चेतना एक है लेकिन एक उपकरण है सूक्ष्म देह, दूसरा उपकरण है स्थूल देह। हमारा अनुभव स्थूल देह तक ही रुक जाता है। यह जो स्थूल देह तक रुक गया अनुभव है यही मनुष्य के जीवन का सारा अंधकार और दुख है। लेकिन कुछ लोग सूक्ष्म शरीर पर भी रुक सकते हैं। जो लोग सूक्ष्म शरीर पर रुक जाते हैं वे ऐसा कहेंगे कि आत्माएं अनंत हैं। लेकिन जो सूक्ष्म शरीर के भी आगे चले जाते हैं वे कहेंगे परमात्मा एक है, आत्मा एक है, ब्रह्म एक है।

मेरी इन दोनों बातों में कोई विरोध नहीं है। मैंने जो आत्मा के प्रवेश के लिए कहा उसका अर्थ है वह आत्मा जिसका अभी सूक्ष्म शरीर गिर नहीं गया है। इसलिए हम कहते हैं कि जो आत्मा परम मुक्ति को उपलब्ध हो जाती है उसका जन्म-मरण बंद हो जाता है। आत्मा का तो कोई जन्म-मरण है ही नहीं, वह न तो कभी जन्मी है और न कभी मरेगी। वह जो सूक्ष्म शरीर है वह भी समाप्त हो जाने पर कोई जन्म मरण नहीं रह जाता है क्योंकि सूक्ष्म शरीर ही कारण बनता है नए जन्मों का। सूक्ष्म शरीर का अर्थ है हमारे विचार, हमारी कामनाएं, हमारी वासनाएं, हमारी इच्छाएं, हमारे अनुभव, हमारे ज्ञान इन सब का जो संग्रहीभूत बीज है वह हमारा सूक्ष्म शरीर है, वही हमें आगे की यात्रा पर ले जाता है। लेकिन जिस मनुष्य के सारे विचार कष्ट हो गए, जिस मनुष्य की सारी वासनाएं क्षीण हो गई, जिस मनुष्य की सारी इच्छाएं विलीन हो गई, जिसके भीतर अब कोई भी इच्छा शेष न रही उस मनुष्य को जाने के लिए कोई जगह नहीं बचती, जाने का कोई कारण नहीं रह जाता। जन्म की कोई वजह नहीं रह जाती।

राम कृष्ण के जीवन में एक अदभुत घटना है। रामकृष्ण को जो लोग बहुत निकट से परमहंस जानते थे उनको यह बात जानकर अत्यंत कठिनाई होती थी कि रामकृष्ण जैसा परमहंस, रामकृष्ण जैसा समाधिस्थ व्यक्ति भोजन के संबंध में बहुत लोलुप था। रामकृष्ण भोजन के लिए बहुत आतुर होते थे और भोजन के लिए इतनी प्रतीक्षा करते थे कि कई बार उठ कर चौका में पहुंच जाते और पूछते शारदा को, बहुत देर हो गई, क्या बन रहा है आज? ब्रह्म की चर्चा चलती और बीच में ब्रह्मचर्य छोड़ कर पहुंच जाते चौके में और पूछने लगते, क्या बना है आज और खोजने लगते। शारदा ने उन्हें आप, आप क्या करते हैं? लोग क्या सोचते होंगे कि ब्रह्म की चर्चा छोड़ कर एकदम अन्न की चर्चा पर आप उतर आते हैं। रामकृष्ण हंसते और चुप रह जाते। उनके शिष्यों ने भी उनको बहुत कहा कि इससे बहुत बदनामी होती है। लोग कहते हैं कि ऐसा व्यक्ति क्या ज्ञान को उपलब्ध हुआ होगा जिसकी अभी रसना, जिसकी अभी जीभी इतनी लालायित होती है भोजन के लिए। एक दिन बहुत कुछ भला-बुरा कहा रामकृष्ण की पत्नी शारदा ने तो रामकृष्ण ने कहा कि तुझे पता नहीं, जिस दिन मैं भोजन के प्रति अरुचि प्रकट करूं, तू समझ लेना कि अब मेरे जीवन की यात्रा केवल तीन दिन और शेष रह गई। बस तीन दिन से ज्यादा फिर मैं बचूंगा नहीं। जिस दिन भोजन के प्रति मेरी उपेक्षा हो, तू समझ लेना कि तीन दिन

बाद मेरी मौत आ जाएगी। शारदा करने लगी, इसका अर्थ? रामकृष्ण कहने लगे, मेरी सारी वासनाएं क्षीण हो गई, मेरी सारी इच्छाएं विलीन हो गई, मेरे सारे विचार नष्ट हो गए, लेकिन जगत के हित के लिए मैं रुका रहना चाहता हूं। मैं एक वासना को जबरदस्ती पकड़े हुए हूं जैसे किसी नाव की सारी जंजीरें खुल गई हों और एक जंजीर से नाव अटकी रह गई हो और वह जंजीर भी टूट जाए तो नाव अपनी अनंत यात्रा पर निकल आएगी। मैं चेष्टा करके रुका हुआ हूं। किसी की समझ में शायद यह बात नहीं आई लेकिन रामकृष्ण की मृत्यु के तीन दिन पहले शारदा थाली लगाकर उनके कमरे में गई। वे बैठे हुए देख रहे थे। उन्होंने थाली देखकर आंखें बंद कर लीं, और पीठ कर ली शारदा की तरफ। उसे एकदम से ख्याल आया कि उन्होंने कहा था कि तीन दिन बाद मौत हो जाएगी जिस दिन जीवन के प्रति अरुचि करूं। उसके हाथ से थाली गिर गई और वह पीट-पीट कर रोने लगी। रामकृष्ण ने कहाः रोओ मत। तुम जो कहती थी वह बात भी अब पूरी हो गई। ठीक तीन दिन बाद रामकृष्ण की मृत्यु हो गई। एक छोटी सी वासना को प्रयास करके वे रोके हुए थे। उतनी छोटी-सी वासना जीवन-यात्रा का आधार बनी थी, वह वासना भी चली गई तो जीवन-यात्रा का सारा आधार समाप्त हो गया। जिसे तीर्थंकर कहते हैं, जिसे हम ईश्वर के पुत्र कहते हैं, जिसे हम अवतार कहते हैं उनकी भी एक ही वासना शेष रह गई होती है और उस वासना को वे शेष रखना चाहते हैं करुणा के हित, मंगल के हित, सर्वमंगल के हित, सर्वलोक के हित। जिस दिन वह वासना भी क्षीण हो जाती है उसी दिन जीवन की यह यात्रा समाप्त और अनंत ही अंतहीन यात्रा शुरू होती है। उसके बाद जन्म नहीं है, उसके बाद मरण नहीं है, उसके न एक है, न अनेक है। उसके पास तो जो शेष रह जाता है उससे संख्या में गिनने का कोई उपाय नहीं, इसलिए जो जानते हज वे यह भी देखते हैं कि ब्रह्म एक है, परमात्मा एक है। क्योंकि एक कहना व्यर्थ है जब कि दो कि गिनती न बनती हो। एक कहने का कोई अर्थ नहीं जब कि दो और तीन नहीं कहे जा सकते हों। एक कहना तभी एक सार्थक है जब तक कि दो, तीन, चार भी सार्थक होते हैं। संख्याओं के बीच की एक की सार्थकता है इसलिए जो जानते हैं वे यह भी नहीं कहते कि ब्रह्म एक है, वे कहते ब्रह्म अद्वैत है, दो नहीं है, बहुत अदभुत बात कहते हैं। वे कहते हैं परमात्मा दो नहीं है। वे यह कहते हैं कि परमात्मा को संख्या मग गिनने का उपाय नहीं है। एक कहकर भी हम संख्या में गिनने की कोशिश करते हैं वह गलत है, लेकिन उस तक पहुंचना दूर, अभी तो हम स्थूल खड़े हैं, उस शरीर पर जो अनंत है, अनेक है। उस शरीर के भीतर हम प्रवेश करेंगे तो एक और शरीर उपलब्ध होगा सूक्ष्म शरीर। उस शरीर को भी पार करेंगे तो वह उपलब्ध होगा जो शरीर नहीं है, अशरीर है, जो आत्मा है।

एक और मित्र ने पूछा है, आत्मा शरीर के बाहर चली जाए तो क्या दूसरे मृत शरीर में भी प्रवेश कर सकते है?

हां, कर सकती है। लेकिन दूसरे मृत शरीर में प्रवेश करने का कोई अर्थ और प्रयोजन नहीं रह जाता। क्योंकि दूसरा शरीर इसीलिए मृत हुआ है है कि उस शरीर में रहनेवाली आत्मा अब उस शरीर में रहने में असमर्थ हो गई थी। वह शरीर व्यर्थ हो गया था इसीलिए छोड़ा गया है, कोई प्रयोजन नहीं है उस शरीर में प्रवेश का। लेकिन इस बात की संभावना है कि दूसरे शरीर में प्रवेश किया जो सके। लेकिन यह प्रश्न पूछना मूल्यवान नहीं है कि हम दूसरे के शरीर में कैसे प्रवेश करें। अपने ही शरीर में हम कैसे बैठे हुए हैं इसका भी हमें कोई पता नहीं। हम दूसरे के शरीर में प्रवेश करने की व्यर्थ की बातों पर विचार करने से क्या फायदा उठा सकते हैं, हम अपने ही शरीर में कैसे प्रविष्ट हो गए हैं इसका भी हमें कोई पता नहीं। हम अपने ही शरीर में कैसे जी रहे हैं इसका भी कोई पता नहीं, हम अपने ही शरीर से पृथक होकर अपने को देख सकें इसका भी कोई अनुभव नहीं। दूसरे के शरीर में प्रवेश का प्रयोजन भी नहीं है लेकिन वैज्ञानिक रूप से यह कहा जा सकता है कि दूसरे के

शरीर में प्रवेश संभव है क्योंकि शरीर न ही दूसरे का है न अपना है। सब शरीर दूसरे हैं। जब मां के पेट में एक आत्मा प्रविष्ट होती है तब भी वह शरीर में प्रवेश हो रही है, बहुत छोटे शरीर में प्रवेश हो रही है, एटोमिक बाडी में प्रवेश हो रही है लेकिन शरीर तो है। वह जो पहले दिन अणु बनता है मां के पेट में, वह अणु आपके शरीर की रूपाकृति अपने में छिपाए हुए है। पचास साल बाद आपके बाल सफेद हो जाएंगे, यह संभावना भी उस छोटे से बीज में छिपी हुई है। आपकी आंख का रंग कैसा होगा, यह संभावना भी उस बीज में छिपी हुई है, आपके हाथ कितने लंबे होंगे, आप स्वस्थ हों कि बीमार, आप गोरे होंगे कि काले, बाल घुंघराले होंगे, ये सारी बातें उस छोटे बीज में छिपी हुई है। वह छोटी देह है, वह एटोमिक बाडी है, अणु शरीर है, उस अणु शरीर में आत्मा प्रविष्ट होती है। उस अणु शरीर की जो संरचना है उस अणु शरीर की जो स्थिति है, उसके अनुकूल आत्मा उसमें प्रविष्ट होती है और दुनिया में जो मनुष्य जाति का जीवन और चेतना रोज नीचे गिरती जा रही है उसका एक मात्र कारण है कि दुनिया के दंपति श्रेष्ठ आत्माओं के जन्म लेने की सुविधा पैदा नहीं कर रहे हैं। जो सुविधा पैदा की जा रही है वह अति निकृष्ट आत्माओं के पैदा होने की सुविधा है। आदमी के मर जाने के बाद जरूरी नहीं है कि उस आत्मा को जल्दी जन्म लेने का अवसर मिल जाए। साधारण आत्माएं, जो न बहुत श्रेष्ठ होती हैं, न बहुत निकृष्ट होती हैं, तेरह दिन के भीतर नए शरीर की खोज कर लेती हैं लेकिन निकृष्ट आत्माएं भी रुक जाती हैं क्योंकि उतना निकृष्ट अवसर मिलना मुश्किल होता है। उन निकृष्ट आत्माओं को ही हम प्रेत और भूत कहते हैं। बहुत श्रेष्ठ आत्माएं भी रुक जाती हैं क्योंकि उतने श्रेष्ठ अवसर का उपलब्ध होना मुश्किल होता है। उन श्रेष्ठ आत्माओं को ही हम देवता कहते हैं। पुरानी दुनिया में भूत प्रेम की संख्या बहुत कम थी और देवताओं की संख्या बहुत ज्यादा। आज की दुनिया में भूत-प्रेतों की संख्या बहुत ज्यादा हो गई है और देवताओं की संख्या कम, क्योंकि देवता पुरुषों का अवसर पैदा होने का कम हो गया है, भूत प्रेत पैदा होने का अवसर बहुत तीव्रता से उपलब्ध हुआ।

तो जो भूत-प्रेत रुके रह जाते हैं मनुष्य के भीतर प्रवेश करने से वे सारे मनुष्य जाति में प्रविष्ट हो गए। इसीलिए आज भूत-प्रेतों का दर्शन मुश्किल हो गया है क्योंकि उनके दर्शन की कोई जरूरत नहीं है। आप आदमी को ही देख लें और उसके दर्शन हो जाते हैं। देवता पर हमारा विश्वास कम हो गया क्योंकि देवपुरुष ही जब दिखाई नहीं पड़ते हों तो देवता पर विश्वास करना बहुत कठिन है। एक जमाना था कि देवता उतनी ही वास्तविकता थीं, उतनी ही एक्चुअलटी थी जितना कि हमारे और जीवन के दूसरे सत्य हैं। अगर हम वेद के ऋषियों को पढ़ें तो ऐसा मालूम पड़ता है कि वे देवताओं के संबंध में जो बात कह रहे हैं वह किसी कल्पना के देवता के संबंध में कह रे हैं, वे ऐसे देवता की बात कह रहे हैं जो उनके साथ गीत गाता है, हंसता है, बात करता है, वे एक ऐसे देवता की बात कर रहे हैं जो पृथ्वी पर उनके अत्यंत निकट चलता है। हमारा देवता से सारा संबंध विनष्ट हुआ है क्योंकि हमारे बीच ऐसे पुरुष नहीं हुए जो सेतु बन सकें, जो ब्रिज बन सकें, जो देवताओं और मनुष्यों के बीच में खड़े होकर घोषणा कर सकें कि देवता कैसे होते हैं। इसका सारा जिम्मा मनुष्य जाति के दांपत्य की जो व्यवस्था है उस पर निर्भर है। मनुष्य जाति की दांपत्य की सारी की सारी व्यवस्था कुरूप है। पहली बात तो यह है कि हमने हजारों साल से प्रेमपूर्ण विवाह बंद कर दिए हैं और विवाह हम बिना प्रेम के कर रहे हैं। जो विवाह प्रेम के बिना होगा उस दंपति के बीच कभी भी वह आध्यात्मिक संबंध उत्पन्न नहीं होगा जो प्रेम से संभव था। उन दोनों के बीच कभी भी वह एकरूपता और संगीत पैदा नहीं हो सकता जो एक श्रेष्ठ आत्मा के जन्म के लिए जरूरी है। उनके प्रेम में वह आत्मा का आंदोलन नहीं होता जो दो प्राणों को एक कर देता है। प्रेम के बिना जो बच्चे पैदा होते हैं प्रेमपूर्ण नहीं हो सकते, वह देवता जैसा नहीं हो सकते, उनकी स्थिति भूत-प्रेत-

जैसी ही होगी, उनका जीवन घृणा भर देगा और हिंसा का ही जीवन होगा। जरा सी बात फर्क पैदा करती है। अगर व्यक्तित्व की बुनियादी लयबद्धता नहीं है तो अदभुत परिवर्तन होते हैं।

शायद आपको पता नहीं होगा, स्त्री पुरुषों से ज्यादा सुंदर क्यों दिखाई पड़ती है। शायद आपको ख्याल न होगा, स्त्री के व्यक्तित्व में एक राउंडनेस, एक सुडौलता क्यों दिखाई पड़ती है? वह पुरुष के व्यक्तित्व में क्यों नहीं दिखाई पड़ती? शायद आपको ख्याल में न होगा कि स्त्री के व्यक्तित्व में एक संगीत, एक नृत्य, एक इनर डांस, एक भीतर नृत्य क्यों दिखाई पड़ता है जो पुरुष में दिखाई नहीं पड़ता। एक छोटा-सा कारण है। एक छोटा-सा, इतना छोटा है कि आप कल्पना भी नहीं कर सकते। इतने छोटे से कारण पर व्यक्तित्व का इतना भेद पैदा हो जाता है। मां के पेट में जो बच्चा निर्मित होता है उसके पहले अणु में चौबीस जीवाणु पुरुष के होते हैं और चौबीस जीवाणु स्त्री के होते हैं। अगर चौबीस-चौबीस के दोनों जीवाणु मिलते हैं तो अड़तालीस जीवाणुओं का पहला सेल निर्मित होता है। अड़तालीस सेल से जो प्राण पैदा होता है वह स्त्री का शरीर बन जाता है। उसके दोनों बाजू 24-24 सेल के संतुलित होते हैं। पुरुष का जो जीवाणु होता है वह सैंतालिस जीवाणुओं को होता है। एक तरफ चौबीस होते हैं, एक तरफ तेईस। बस यह संतुलन टूट गया वहीं से व्यक्तित्व का। स्त्री के दोनों पलड़े व्यक्तित्व के बाबत संतुलन के हैं। उससे सारा स्त्री का सौंदर्य, उसकी सुडौलता, उसकी कला, उसके व्यक्तित्व का रस, उसके व्यक्तित्व का काव्य पैदा होता है और पुरुष के व्यक्तित्व में जरा-सी कमी है। तो उसका एक तराजू चौबीस जीवाणुओं से बना हुआ है। मां से जो जीवाणु मिलता है वह चौबीस का बना हुआ है और पुरुष से जो मिलता है वह तेईस का बना हुआ है। पुरुष के जीवाणुओं में दो तरह के जीवाणु होते हैं, चौबीस कोष्ठधारी और तेईस कोष्ठधारी। तेईस कोष्ठधारी जीवाणु अगर मां के चौबीस कोष्ठ-धारी जीवाणु से मिलता है तो पुरुष का जन्म होता है। इसलिए पुरुष में एक बेचैनी जीवन भर बनी रहती है, एक असंतोष बना रहता है। क्या करूं, क्या न करूं, एक चिंता, एक बेचैनी, यह कर लूं, यह कर लूं, वह कर लूं। पुरुष की जो बेचैनी है वह एक छोटी-सी घटना से शुरू होती है और यह घटना है कि उसके एक पलड़े पर एक अणु कम है। उसके व्यक्तित्व का संतुलन कम है। स्त्री का संतुलन पूरा है, उसकी लयबद्धता पूरी है। इतनी-सी घटना इतना फर्क लाती है। इससे स्त्री सुंदर तो हो सकती लेकिन विकासमान नहीं हो सकती, क्योंकि जिस व्यक्तित्व में समता है वह विकास नहीं करता, वह ठहर जाता है। पुरुष का व्यक्तित्व विषम है। विषम होने के कारण वह दौड़ता है, विकास करता है। एवरेस्ट चढ़ता है, पहाड़ पार करता है, चांद पर जाएगा, तारों पर जाएगा, खोज बीन करेगा, सोचेगा, ग्रंथ लिखेगा, धर्म-निर्माण करेगा। स्त्री यह कुछ भी नहीं करेगी। न वह एवरेस्ट पर जाएगी, न वह चांद तारों पर जाएगी, न वह धर्मों की खोज करेगी, न ग्रंथ लिखेगी, न विज्ञान की शोध करेगी। वह कुछ भी नहीं करेगी। उसके व्यक्तित्व में एक संतुलन उसे पार होने के लिए तीव्रता से नहीं भरता है। पुरुष ने सारी सयता विकसित की, एक छोटी ही बात के कारण। उसमें एक अणु कम है। स्त्री ने सारी सयताएं विकसित नहीं की। उसमें एक अणु पूरा है। उतनी सी घटना व्यक्तित्व का भेद ला सकती है। तो पुरुष और स्त्री के मिलने पर जिस बच्चे का जन्म होता है वह उन दोनों व्यक्तियों में कितना गहरा प्रेम है, कितनी आध्यात्मिकता, कितनी पवित्रता है, कितने प्रार्थनापूर्ण हृदय से वे एक दूसरे के पास आए हैं इस पर निर्भर करेगा। कितनी ऊंची आत्मा उनकी तरफ आकर्षित होती है, कितनी विराट आत्मा उनकी तरफ आकर्षित होती है, कितना महान दिव्य चेतना उस घर में अपना अवसर बनाती है यह इस पर निर्भर करेगा।

मनुष्य जाति क्षीण और दीन-दरिद्र और दुखी होती चली जा रही है। उसके बहुत गहरे में दांपत्य का विकृत होना कारण है। और जब तक हम मनुष्य के दांपत्य जीवन को स्वीकृत नहीं कर लेते, जब तक उसे हम

आध्यात्मिक नहीं कर लेते तब तक हम मनुष्य के भविष्य में सुधार नहीं कर सकते। और इस दुर्भाग्य में उन लोगों का भी हाथ है जिन लोगों ने गृहस्थ जीवन की निंदा की है और संन्यास जीवन का बहुत ज्यादा शोरगुल मचाया है। क्योंकि एक बार गृहस्थ जीवन निंदित हो गया तो उस तरफ हमने विचार करना छोड़ दिया। मैं आपसे कहना चाहता हूं, संन्यास के रास्ते से बहुत थोड़े लोग ही परमात्मा तक पहुंच सकते हैं। बहुत थोड़े से लोग, कुछ विशिष्ट तरह के लोग, कुछ अत्यंत निम्न तरह के लोग संन्यास के रास्ते से परमात्मा तक पहुंचते हैं। अधिकतम लोग गृहस्थ के रास्ते से और दांपत्य के रास्ते से ही परमात्मा तक पहुंचते हैं और आश्चर्य की बात यह है कि गृहस्थ के मार्ग से पहुंच अत्यंत सरल और सुलभ है लेकिन उस तरफ कोई ध्यान नहीं दिया गया। आज तक का सारा धर्म संन्यासियों के प्रति प्रभाव से पीड़ित है, आज तक का पूरा धर्म गृहस्थ के लिए विकसित नहीं हो सकता और अगर गृहस्थ के लिए धर्म विकसित होता तो हमने जन्म के पहले चरण में विचार किया होता कि कैसी आत्मा को आमंत्रित करना है, कैसी आत्मा को पकड़ना है, कैसी आत्मा को जीवन में प्रवेश देना है। अगर धर्म की ठीक-ठीक शिक्षा हो सकते और एक-एक व्यक्ति को धर्म का विचार, कल्पना और भावना दी जा सके तो बीस वर्षों में आनेवाले मनुष्य की पीढ़ी को बिल्कुल नया बनाया जा सकता है। वह आदमी पापी है जो आनेवाली आत्मा के लिए प्रेमपूर्ण आमंत्रण भेजे बिना भोग में उतरता है। वह आदमी अपराधी है, उसके बच्चे नाजायज हैं, चाहे उसे बच्चे विवाह के द्वारा पैदा किए हों। जिसने बच्चों को अत्यंत प्रार्थना और पूजा से और परमात्मा को स्मरण करके नहीं बुलाया है, वह आदमी अपराधी है, वह अपराधी रहेगा। कौन हमारे भीतर प्रविष्ट होता है इस पर निर्भर करता है सारा भविष्य। हम शिक्षा की फिक्र करते हैं, हम वस्त्रों की फिक्र करते हैं, हम बच्चों के स्वास्थ्य की फिक्र करते हैं लेकिन बच्चे की आत्मा की फिक्र करते हैं, हम बच्चों के स्वास्थ्य की फिक्र करते हैं लेकिन बच्चे की आत्मा की फिक्र हमने बिल्कुल ही छोड़ दी है। इससे कभी भी कोई अच्छी मनुष्य जाति पैदा नहीं हो सकती। इसलिए यह फिक्र न करें कि दूसरे के शरीर में कैसे प्रवेश करें। इस बात की फिक्र करें कि आप इस शरीर में ही कैसे प्रवेश कर गए।

इस संबंध में एक मित्र ने पूछा है कि क्या हम अपने अतीत जन्मों को जान सकते हैं?

निश्चित ही जान सकते हैं। लेकिन अभी तो आप इस जन्म को भी नहीं जानते अतीत के जन्मों को जानता तो फिर बहुत कठिन है। निश्चित ही मनुष्य जान सकता है अपने पिछले जन्मों को क्योंकि जो एक एक बार चित्र पर स्मृति बन गई है वह नष्ट नहीं होती। वह हमारे चित्र के गहरे तलों में अनभिज्ञ हिस्सों में सदा मौजूद रहती है। हम जो भी जानते हैं उसे कभी नहीं भूलते हैं। अगर मैं आपसे पूछूं कि 1950 की 1 जनवरी को आपने क्या किया था तो शायद आप कुछ भी नहीं बता सकेंगे। आप कहेंगे मुझे क्या याद है, मुझे कुछ भी याद नहीं है। कुछ भी ख्याल नहीं आता कि मैंने कुछ किया, लेकिन अगर आपको सम्मोहित किया जा सके और सरलता से किया जा सकता है और आपको बेहोश करके पूछा जाए कि 1 जनवरी 1950 को आपने क्या किया तो आप सुबह से सांझ तक का ब्योरा इस तरह बता देंगे जैसे अभी वह एक जनवरी आपके सामने से गुजर रही है। आप यह भी बता देंगे कि 1 जनवरी को सुबह जो मैंने चाय पी थी, उसमें शक्कर थोड़ी कम थी आप यह भी बता देंगे कि हम आदमी ने मुझे चाय दी थी उसके शरीर से पसीने की बदबू आ रही थी। आप इतनी छोटी बातें बता देंगे कि जो जूता मैं पहने हुए था वह मुझे पैर में काट रहा था। सम्मोहित अवस्था में आपके भीतर की स्मृति को बाहर लाया जा सकता है। मैंने उस दिशा में बहुत-से प्रयोग किए हैं इसलिए आपसे कहता हूं। जिस मित्र की भी इच्छा हो अपने पिछले जन्मों में जाने की उन्हें ले जाया जा सकता है। लेकिन पहले उसे इसी जन्म की ही स्मृतियों में पीछे लौटना पड़ेगा। वहां तक पीछे लौटना पड़ेगा जहां वह मां के पेट में गर्भ धारण हुआ, और उसके बाद फिर

दूसरे जन्म की स्मृतियों में प्रवेश किया जा सकता है। लेकिन ध्यान रहे प्रकृति ने पिछले जन्मों को भुलाने की व्यवस्था अकारण नहीं की है। कारण बहुत महत्वपूर्ण है। और पिछले जन्म तो दूर हैं, अगर आपको एक महीने की ही सारी बातें याद रह जाएं तो आप पागल हो जाएंगे। एक दिन की नींद में अगर सुबह से शाम तक की सारी बातें याद रह जाएं तो आप जिंदा नहीं रह सकेंगे। तो प्रकृति की सारी व्यवस्था यह है कि आपका मन जितना तनाव झेल सका है उतनी ही स्मृति आपके भीतर शेष रहने दी जाती है। शेष सब अंधेरे गर्त में डाल दी जाती हैं। जैसे घर में एक कबाड़ होता है। बेकार चीजें आप कबाड़ घर में डालकर दरवाजा बंद कर देते हैं वैसे ही स्मृति का एक कलेक्टिव हाउस, एक अनकांसस घर है, एक अचेतन घर है जहां स्मृति में जो बेकार होता चला जाता है जिसे चित्र में रखने की जरूरत नहीं है वह संग्रहीत होता रहता है। वहां जन्मों-जन्मों की स्मृतियों संग्रहीत हैं। लेकिन अगर कोई आदमी अनजाने बिना समझे हुए उस घर में प्रविष्ट हो जाए तो तत्क्षण पागल हो जाएगा। इतनी ज्यादा हैं वे संस्मृतियां।

एक महिला मेरे पास प्रयोग करती थी। उनकी बहुत इच्छा थी कि वे पिछले जन्मों को जानें। मैंने उनको कहा कि यह हो सकता है लेकिन आगे की जिम्मेदारी समझ लेनी चाहिए, क्योंकि हो सकता है पिछले जन्म को जानने से आप बहुत चिंतित और परेशान हो जाएं। उन्होंने कहा कि नहीं, मैं क्यों परेशान होऊंगी। पिछला जन्म तो हो चुका है अब, क्या फिक्र की बात है। उन्होंने प्रयोग शुरू किया। वे एक कालेज में प्रोफेसर थीं। बुद्धिमान थीं, समझदार थीं हिम्मतवर थी। उन्होंने प्रयोग शुरू किया और जिस भांति मैंने कहा उन्होंने गहरे से गहरे मेडिटेशन किए, गहरे से गहरा ध्यान किया। धीरे-धीरे स्मृति के नीचे पत्तों को उघाड़ना शुरू किया और एक दिन जब पहली बार उन्हें पिछले जन्म में प्रवेश मिला वह भागती हुई आई। उनके हाथ-पैर कंप रहे थे। आंखों से आंसू बह रहे थे एकदम छाती पीट-पीटकर रोने लगीं और कहने लगीं कि मैं भूलना चाहती हूं उस बात को जो मुझे याद आ गई। मैं उस पिछले जन्म में अब आगे नहीं जाना चाहती। मैंने कहा अब मुश्किल है। जो याद आ गई उसे भूलने में फिर बहुत वक्त लग जाएगा लेकिन इतनी घबराहट क्या है उन्होंने कहा, नहीं पूछिए ही मत। मैं तो सोचती थी कि मैं बहुत पतिव्रता हूं, बहुत सच्चरित्र हूं, लेकिन पिछले जन्म में एक मंदिर में वेश्या थी। मैं देवदासी थी और मैंने हजारों पुरुषों के साथ संभोग किया और मैंने अपने शरीर को बेचता। नहीं, मैं उसे भुलाना चाहती हूं। मैं उसे एक क्षण भी याद नहीं रखना चाहती। मैंने कहा, अब इतना आसान नहीं है। याद करना बहुत आसान है, भूल जाना बहुत मुश्किल है।

पिछले जन्म में लाया जा सकता है और जिसकी मर्जी हो उसके रास्ते हैं। महावीर और बुद्ध दोनों ने मनुष्य जाति को बड़े से बड़ा दान दिया है। वह उनकी अहिंसा का सिद्धांत नहीं है। वह सबसे बड़ा दान है। वह है पिछले जन्मों की स्मृति में उतरने की कला। महावीर और बुद्ध दोनों पहले आदमी पृथ्वी पर हैं जिन्होंने प्रत्येक साधक के लिए यह कहा कि तब तक तुम आत्मा से परिचित नहीं हो सकोगे जब तक तुम पिछले जन्मों में नहीं उतरते हो और उन्होंने प्रत्येक साधक को पिछले जन्मों की स्मृतियों में जाने की हिम्मत जुटा ले वह दूसरा आदमी हो जाएगा, क्योंकि उसे पता चलेगा कि जिन बातों को मैं हजारों बार कर चुका हूं उन्हीं को फिर कर रहा हूं। कैसा पागल हूं, कितनी बार मैंने संपत्ति इकट्ठी की है, कितनी बार मैंने करोड़ों के अंबार लगा दिए, कितनी बार मैंने महल खड़े किए, कितनी बार इज्जत ज्ञान और पद और बार दिल्ली के सिंहासनों की यात्रा कर ली है। कितनी बार, कितनी अनंत बार, और फिर मैं वही कर रहा हूं और हर यात्रा असफल हो गई है। वह यात्रा इस बार भी असफल हो जाएगी। तत्क्षण उसकी संपत्ति की दौड़ बंद हो जाएगी, तत्क्षण उसके पदों का मोह नष्ट हो जाएगा। वह आदमी जानेगा मैंने हजारों-हजारों वर्षों में कितनी स्त्रियां भोगी, स्त्रियां जानेंगी कि

मैंने हजारों-हजारों वर्षों में कितने पुरुष भोगे और न किसी पुरुष से तृप्ति मिली और न किसी स्त्री से तृप्ति मिली और अब भी मैं यही सोच रहा हूं कि इस स्त्री को भोगूं, उस स्त्री को भोगूं, इस पुरुष को भोगूं, उस पुरुष को भोगूं। यह करोड़ बार हो चुका है।

एक बार स्मरण आ जाए इसका तो फिर यह दोबारा नहीं हो सकता। क्योंकि इतने बार जब हम कर चुके हों और कोई फल न पाया हो तो फिर आगे उसे दोहराए जाने का उपाय नहीं है, कोई अर्थ नहीं है। बुद्ध और महावीर दोनों ने अतीत जन्मों की स्मृति के गहरे प्रयोग किए। जो साधक एक बार उस स्मृति से गुजर गया वह दूसरा हो गया, टरंसफार्म हो गया, बदल गया। जिन मित्र ने पूछा है उनको जरूर कहूंगा कि अगर उनकी इच्छा हो तो उन्हें पिछली स्मृति में ले जाया जा सकता है। लेकिन सोच-समझकर ही उस प्रयोग में जाया जा सकता है। इस जिंदगी की चिंताएं ही काफी हैं, इस जिंदगी की परेशानियां ही बहुत हैं। इस जिंदगी की चिंताएं ही काफी हैं, इस जिंदगी की परेशानियां ही बहुत हैं। इस जिंदगी को भुलाने के लिए आदमी शराब पीता है, सिनेमा देखता है, ताश खेलता है, जुआ खेलता है। दिन भर को भुलाने के लिए रात में शराब पी लेता है। जो आदमी आज के दिन भर को याद नहीं रख सकता वह आदमी कैसे पिछले जन्मों को याद करने की हिम्मत जुटा पाएगा? यह जानकर आपको हैरानी होगी कि सारे धर्मों ने शराब का इसलिए विरोध किया है कि उससे चरित्र नष्ट हो जाता है, घर की संपत्ति नष्ट हो जाती है, आदमी लड़ने-झगड़ने लगता है।

धर्मों ने शराब का विरोध सिर्फ इसलिए किया है कि जो आदमी शराब पीता है वह अपने को भुलाने का उपाय कर रहा है और जो आदमी अपने को भुलाने का उपाय कर रहा है वह अपनी आत्मा से कभी भी परिचित नहीं हो सकता। आत्मा से परिचित होने के लिए तो अपने को जानने का उपाय करना है। इसलिए शराब और समाधि दो विरोधी चीजें बन गई। आमतौर से लोग समझते हैं कि शराबी आदमी बुरा होता है। मैं शराबियों को भी जानता हूं और उनको भी जो शराब नहीं पीते हैं। मैंने आज तक हजारों अनुभव में यह पाया है कि शराब पीनेवाला न पीनेवाले से कई अर्थों में अच्छा होता है। मैंने शराब पीनेवालों में जितनी दया देखी और करुणा, उतनी मैंने गैर शराब पीनेवालों में नहीं देखी। मैंने शराब पीनेवालों में जितनी विनम्रता देखी, उतनी मैंने शराब नहीं पीनेवालों में नहीं देखी। जितनी अकड़ मैंने देखी शराब न पीनेवालों में उतनी अकड़ शराब पीनेवालों में दिखाई नहीं पड़ी, लेकिन इन सारी बातों के कारण धर्म ने विरोध नहीं किया है विरोध किया है इसलिए कि जो आदमी अपने को भुलाने का उपाय करता है वह अपने साहस को छोड़ रहा है, याद करने के, स्मृति के। और जो आदमी इसी जन्म को भुलाने की फिक्र में लगा है वह पिछले जन्मों को याद कैसे कर सकेगा और जो पिछले जन्मों को याद नहीं कर सकता वह इस जन्म को बदलेगा कैसे फिर एक अंधा रिपीटीशन चलता रहेगा जो हमने बार बार किया है वही हम बार बार करते चले जाएंगे। अंतहीन है यह प्रक्रिया और जब तक हमें स्मरण नहीं होगा, हम बार बार जन्मेंगे और उन्हीं बेवकूफियों को बार बार करेंगे जिन्हें हम बार-बार किया है और उसका कोई अंत नहीं। इस बोर्डम का, इसशृंखला का कोई अर्थ नहीं है क्योंकि बार-बार हम फिर मर जाएंगे, फिर भूल जाएंगे, फिर वही शुरू हो जाएगा। एक सर्किल की तरह, कोल्हू के बैल की तरह हम घूमते रहेंगे। जिन लोगों ने इस जीवन को संसार कहा, संसार का आप मतलब समझते हैं? संसार का मतलब ह्व, एक घूमता हुआ चाक जिसमें स्पोक जो हैं फिर ऊपर चले जाते हैं फिर नीचे, फिर ऊपर चले जाते हैं, फिर नीचे चले जाते हैं।

वह जो हिंदुस्तान के राष्टीय ध्वज पर चक्र बना हुआ है वह पता नहीं हिंदुस्तान के सोचने-समझने वालों ने किस वजह से वहां रख दिया। शायद उनको पता नहीं, वे न मालूम क्या सोचते होंगे। अशोक ने उस चक्र को इसलिए खोदवाया था अपने स्तूपों पर ताकि आदमी को पता रहे कि जिंदगी एक घूमता हुआ चाक है, कोल्हू का

बैल है। उसमें हर चीज घूमकर फिर वहीं आ जाती है। वह संसार का प्रतीक है। वह किसी विजय चक्र यात्रा का प्रतीक नहीं है। वह जिंदगी के रोज हार जाने का प्रतीक है, वह इस बात का प्रतीक है कि जिंदगी बार-बार दोहरा जाने वाला चाक है। लेकिन हर बार हम भूल जाते हैं इसलिए दोबारा फिर बड़े रसलीन होकर दोहराने लगते हैं। एक युवक एक युवती कह तरफ प्रेम करने को बढ़ रहा हो, उसे पता नहीं कि वह कितनी बार बढ़ चुका है, कितनी युवतियों के पीछे दौड़ चुका है, लेकिन अब फिर बढ़ रहा है और सोचता है कि जिंदगी में पहली दफा यह घटना घट रही है। यह अदभुत घटना है, यह अदभुत घटना बहुत दफे घट चुकी है और अगर उसे ही पता चल जाए तो उसकी हालत वैसी हो जाएगी जैसे किसी आदमी की एक फिल्म को दस-पच्चीस दफा देख कर हो जाती है। अगर आप आज देखने गए हैं तो बात और है, कल भी आपको ले जाया जाए तो आप बरदाश्त फिल्म कर लेंगे। तीसरे दिन आप कहने लगेंगे, क्षमा कीजिए, अब मैं नहीं जाना चाहता हूं। लेकिन आपको मजबूर किया जाए या कोई पुलिसवाले पीछे लगे हैं वे आपको ले ही जाएंगे और 15 दिन वही फिल्म, दिखलावें तो सोलहवें दिन आप भागते की कोशिश करेंगे कि अब इस फिल्म को मैं नहीं देखना चाहता हूं। यह हद हो गई। 15 दिन देख चुका हूं और अब कब तक देखता रहूंगा। लेकिन वह पुलिस वाला पीछे लगना चाहता है कि नहीं, यह तो देखनी ही पड़ेगी। लेकिन अगर रोज फिल्म देखने के बाद अफीम खिला दी जाए और आप भूल जाएं कि मैंने यह फिल्म देखी थी तो दूसरे दिन फिर आप टिकट लेकर उसी फिल्म में मौजूद हो सकते हैं और बड़े मजे से देख सकते हैं।

आदमी हर बार जब शरीर को बदलता है तब उस शरीर से संजोई गई स्मृतियों का द्वार बंद हो जाता है, फिर नया खेल शुरू हो जता है, फिर वही खेल, फिर वही बात। फिर सब वही जो बहुत हो चुका है। जाति-स्मरण से यह स्मरण आता है कि यह तो बहुत बार हो चुका है, यह कहानी तो बहुत बार देखी जा चुकी है, यह गीता तो बहुत बार गाए जा चुके हैं, यह तो बरदाश्त के बाहर हो गई है बात। जाति-स्मरण से पैदा होती है विरक्ति, जाति-स्मरण से पैदा होता है वैराग्य, और किसी तरह वैराग्य उत्पन्न नहीं होता। वैराग्य उत्पन्न होता है जाति-स्मरण से, वह जो बीत गए जन्म हैं उनकी स्मृति से। इसलिए दुनिया में वैराग्य कम हो गया है क्योंकि पिछले जन्मों का कोई स्मरण नहीं, कोई उपाय नहीं। मेरी तैयारी पूरी है, मैं जो भी कह रहा हूं उसे सिर्फ इसलिए नहीं कह रहा हूं कि मेरे लिए वह कोई सिद्धांत है। मैं जो भी कह रहा हूं एक-एक शब्द पर जिद्द के साथ प्रयोग करने की मेरी तैयारी है, और किसी आदमी की तैयारी हो तो मुझे बहुत खुशी होगी। मैंने आमंत्रण दिया था कि जो लोग संकल्प करने की हिम्मत रखते हैं, वे आगे बढ़ें। दो चार मित्रों के पत्र आए और मुझे बहुत खुशी हुई। उन्होंने खबर दी है कि हम बहुत उत्सुक हैं और हम प्रतीक्षा में थे कि कोई हमें बुलाए और आपने पुकार दी है तो हम राजी हैं। वे राजी हैं तो मुझे बहुत खुशी है और मेरा द्वार उनके लिए खुला है। मैं उन्हें जितनी दूर से चलना चाहूं या वे जितनी दूर चलना चाहें उतनी दूर उन्हें ले जाया जा सकता है। अगर थोड़े लोग भी प्रबुद्ध हो सकें तो हम मनुष्य जाति के सारे के सारे अंधकार को तोड़ सकते हैं।

हिंदुस्तान में दो विपरीत ढंग के प्रयोग पचास सालों में चले। एक प्रयोग गांधी ने किया, एक प्रयोग श्री अरविंद ने गांधी ने एक-एक मनुष्य के चरित्र को ऊपर उठाने का प्रयोग किया। उसमें गांधी सफल होते हुए दिखाई पड़े लेकिन बिल्कुल असफल हो गए जिन लोगों को गांधी ने सोचा था कि इनका चरित्र मैंने उठा लिया वे बिल्कुल मिट्टी के पुतले साबित हुए। जरा पानी गिरा और सब रंग रोगन बह गया। बीस साल में रंग रोगन बह गया वह हम सब देख रहे हैं। कहीं कोई रंग-रोगन नहीं है। वह जो गांधी ने पोत-पात कर तैयार किया था वह वर्षा में बह गया। जब तक पद की वर्षा नहीं हुई थी तब तक उनकी शकलें बहुत शानदार मालूम पड़ती थीं

और उनके खादी के कपड़े बहुत धुले हुए दिखाई पड़ते थे और उनकी टोपियां ऐसी लगती थीं कि मुल्क को ऊपर उठा लेंगी, लेकिन आज वे ही टोपियां ऐसी लगती थीं कि मुल्क को ऊपर उठा लेंगी, लेकिन आज वे ही टोपियां मुल्क के भ्रष्टाचार की प्रतीक बन गई हैं। गांधी ने एक प्रयोग किया था जिसमें मालूम हुआ कि वे सफल हो रहे हैं लेकिन बिल्कुल असफल हो गया। श्री अरविंद एक प्रयोग करते थे जिसमें वे सफल हो हुए नहीं मालूम पड़े, लेकिन उनकी दिशा बिल्कुल ठीक थी। वे यह प्रयोग कर रहे थे कि क्या यह संभव है कि थोड़ी-सी आत्माएं इतने ऊपर उठ जाएं कि उनकी मौजूदगी, दूसरी आत्माओं को ऊपर उठाने लगे और पुकारने लगे और दूसरी आत्माएं ऊपर उठने लगें। क्या यह संभव है कि एक मनुष्य की आत्मा ऊपर उठे और उसके साथ आत्माओं का स्तर ऊपर उठ जाए। यह न केवल संभव है, बल्कि केवल यही संभव है। दूसरी आज कोई बात सफल नहीं हो सकती। आज आदमी तो इतने नीचे गिर चुका है कि अगर हमने यह फिक्र की कि हम एक-एक आदमी को बदलेंगे तो शायद यह बदलाहट कभी नहीं होगी बल्कि जो आदमी उनको बदलेंगे तो शायद यह बदलाहट कभी नहीं होगी बल्कि जो आदमी उनको बदलने जाएगा उनके सत्संग में उसके खुद के बदल जाने की संभावना ज्यादा है। उसके बदले जाने की संभावना है कि वह भी उनके साथ भ्रष्ट हो जाएगा। आप देखते हैं जितने जनता के सेवक, जनता की सेवा करने जाते हैं थोड़े दिन में पता चलता है कि वे जनता की जेब काटने वाले सिद्ध होते हैं। वे गए थे सेवा करने, वे गए थे लोगों को सुधारने, थोड़े दिन में पता चलता है कि लोग उनको सुधारने का विचार करते हैं। मनुष्य जाति की चेतना का इतिहास यह कहता है कि दुनिया की चेतना किन्हीं कालों में एकदम ऊपर उठ गई थी आपको शायद इसका अंदाज न हो। 2500 वर्ष पहले, हिंदुस्तान में बुद्ध पैदा हुए, प्रबुद्ध कात्यायन हुआ, मावली गोसाल हुआ, संजय विलाटीपुत्र हुआ। यूनान में सुकरात हुआ, प्लेटो हुआ, अरस्तु हुआ, प्लटनस हुआ। चीन में लाओत्से हुआ, कंफ्यूशस हुआ, च्यांतसे हुआ। 2500 साल पहले सारी दुनिया में कुल दस पंद्रह लोग इतनी कीमत के हुए कि उन एक सौ वर्षों में दुनिया की चेतना एकदम आकाश छूने लगी। सारी दुनिया का स्वर्ण युग आ गया ऐसा मालूम हुआ। इतनी प्रखर आत्मा मनुष्य की कभी प्रकट नहीं हुई थी। महावीर के साथ पचास हजार लोग गांव-गांव घूमने लगे। बुद्ध के साथ हजार भिक्षु खड़े हो गए और उनकी रोशनी और ज्योति गांव-गांव को जगाने लगी। जिस गांव में बुद्ध अपने दस हजार भिक्षुओं को लेकर पहुंच जाते, तीन दिन के भीतर उस गांव की हवा के अणु बदल जाते। जिस गांव में वे दस हजार भिक्षु बैठ जाते, जिस गांव में वे दस हजार भिक्षु प्रार्थना करने लगते उस गांव में जैसे अंधकार मिट जाता, जैसे उस गांव में रोशनी छा जाती, जैसे उस गांव के हृदय में कुछ फूल खिलने लगते जो कभी नहीं खिले थे। कुछ थोड़े से लोग उठे ऊपर और उनके साथ ही नीचे के लोगों की आंखें ऊपर उठीं। नीचे के लोगों की आंखें तभी ऊपर उठती हैं जब ऊपर देखने जैसा कुछ हो। ऊपर देखने जैसा कुछ भी नहीं है, नीचे देखने जैसा बहुत कुछ है। जो आदमी जितना नीचे उतर जाता है उतनी बड़ी तिजोरी बना लेता है। जो आदमी जितना नीचे उतर जाता है वह उतनी कीमती जवाहर खरीद लाता है। नीचे देखने जैसा बहुत कुछ है। दिल्ली बिल्कुल गड्ढे में बस गई है, बिल्कुल नीचे। वहां नीचे देखो, पाताल में दिल्ली है। तो जिसको भी दिल्ली पहुंचना हो उसको पाताल में उतरना चाहिए, नीचे-नीचे उतरने जाना चाहिए। ऊपर देखने जैसा कुछ भी नहीं है। किसकी तरफ देखेंगे, कौन है ऊपर? इससे बड़ा दुर्भाग्य क्या हो सकता है कि ऊपर देखने जैसी आत्माएं नहीं हैं जिनकी तरफ देखकर प्राणों में आकर्षण उठे, जिनकी तरफ देखकर प्राणों में पुकार हो, जिनकी तरफ देखकर प्राण धिक्कारने लगे, अपने को कि यह प्रकाश तो मैं भी हो सकता था, ये फूल तो मेरे भीतर भी खिल सकते थे, यह गीत तो मैं भी गा सकता था। यह बुद्ध, और यह महावीर और यह कृष्ण और यह क्राइस्ट मैं भी हो सकता था। एक बार यह ख्याल आ जाए कि मैं भी हो सकता था। यहां लेकिन कोई हो जिसे

देखकर यह ख्याल आ जाए तो प्राण ऊपर की यात्रा शुरू कर देते हैं। स्मरण रहे प्राण हमेशा यात्रा करते हैं, अगर ऊपर की नहीं करते हैं तो नीचे की करते हैं। प्राण रुकते कभी नहीं हैं या तो ऊपर जाएंगे या नीचे रुकना जैसी कोई चीज नहीं है। ठहराव जैसी कोई चीज हनीं है, स्टेशन-जैसी कोई जगह चेतना के जगत में नहीं है जहां आप रुक जाए और विश्राम कर लें। जीवन प्रति क्षण गतिमान है। ऊपर की तरफ चेतनाएं खड़ी करनी हैं।

मैं सारी दुनिया में एक आंदोलन चाहता हूं। बहुत ज्यादा लोगों का नहीं, थोड़े से हिम्मतवर लोगों का, जो प्रयोजन करने को राजी हों। अगर सौ आदमी हिंदुस्तान में प्रयोग करने को राजी हों और तय कर लें इस बात को कि हम अब आत्मा को उन ऊंचाइयों तक ले जाएंगे जहां आदमी का जाना संभव है 20 वर्ष में हिंदुस्तान की पूरी शकल बदल सकती है। विवेकानंद ने मरते वक्त कहा था कि मैं पुकारता रहा सौ लोगों को, लेकिन वे सौ लोग नहीं आए और मैं हारा हुआ मर रहा हूं। सिर्फ सौ लोग आ जाते तो मैं देश को बदल देता। विवेकानंद पुकारते रहे, सौ लोग नहीं आए। मैंने तय किया है कि मैं पुकारूंगा नहीं, गांव-गांव खोजूंगा, आंख-आंख में झांकूंगा कि वह कौन आदमी है। अगर पुकारने से नहीं आवेगा तो खींचकर लाना पड़ेगा। सौ लोगों को भी लाया जा सके तो यह मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि उन लोगों की उठती हुई आत्माएं एक एवरेस्ट की तरह, एक गौरीशंकर की तरह खड़ी हो जाएंगी। पूरे मुल्क के प्राण उस यात्रा पर आगे बढ़ सकते हैं। जिन मित्रों को मेरी चुनौती ठीक लगती हो और जिसको साहस और बल मालूम पड़ता हो उस रास्ते पर जाने का जो बहुत अपरिचित है, उस रास्ते पर, उस समुद्र में, जिसका कोई नक्शा नहीं है हमारे पास तो उसे समझ लेना चाहिए कि उसमें इतनी हिम्मत और साहस सिर्फ इसलिए है कि बहुत गहरे में परमात्मा ने उसको पुकारा होगा नहीं तो इतना साहस और इतनी हिम्मत नहीं हो सकती थी। मिश्र में कहा जाता था कि जब कोई परमात्मा को पुकारता है तो उसे जान लेना चाहिए कि उससे बहुत पहले परमात्मा ने उसे पुकार लिया होगा अन्यथा पुकार ही पैदा नहीं होती। जिनके भीतर भी पुकार है और उनके ऊपर एक बड़ा दायित्व है आज तो जगत के कोने-कोने में जाकर कहने की यह बात है कि कुछ थोड़े-से लोग बाहर निकल आवें और सारे जीवन को ऊंचाइयां अनुभव करने के लिए समर्पित कर दें। जीवन के सारे सत्य, जीवन के आज तक के सारे अनुभव असत्य हुए जा रहे हैं। जीवन के आज तक की जितनी ऊंचाइयां थीं, जो छूई गई थीं, वे काल्पनिक हुई जा रही हैं, पुराण-कथाएं हुई जा रही हैं। सौ दो सौ वर्ष बाद बच्चे इंकार कर देंगे कि बुद्ध और महावीर और क्राइस्ट जैसे लोग नहीं हुए, ये सब कहानियां हैं। एक आदमी ने तो पश्चिम में एक किताब लिखी है और उसने लिखा है कि क्राइस्ट जैसा आदमी कभी नहीं है। यह सिर्फ एक पुराना नाटक है। धीरे-धीरे लोग भूल गए कि डरमा है और लोग समझने लगे कि इतिहास है। अभी हम रामलीला खेलते हैं। हम समझते हैं राम कभी हुए और इसलिए हम रामलीला खेलते हैं। सौ वर्ष बाद बच्चे कहेंगे कि रामलीला लिखी जारी रही और लोगों में भ्रम पैदा हो गया कि राम कभी हुए। रामलीला एक नाटक रहा होगा। बहुत दिनों से चलता रहा क्योंकि जब हमारे सामने राम और बुद्ध और क्राइस्ट जैसे आदमी दिखाई पड़ने बंद हो जाएंगे तब हम कैसे विश्वास कर लेंगे कि ये लोग कभी हुए।

फिर आदमी का मन कभी यह मानने को राजी नहीं होता कि उससे ऊंचे आदमी भी हो सकते हैं। आदमी का मन यह मानने को कभी भी राजी नहीं होता कि मुझसे ऊंचा भी कोई है। हमेशा उसके मन में यह मानने की इच्छा होती है कि मैं सबसे ऊंचा आदमी हूं। अपने से ऊंचे आदमी को तो वह बहुत मजबूरी में मानता है, नहीं तो कभी मानता ही नहीं है। हजार कोशिश करता है खोजने की कि कोई भूल मिल जाए, कोई खामी मिल जाए, तो बता दूं कि यह आदमी भी नीचा है। तृप्त हो जाऊं कि नहीं यह बात गलत थी। कोई पता चल जाए तो जल्दी से घोषणा कर दूं कि पुरानी मूर्ति खंडित हो गई, वह पुरानी मूर्ति अब मेरे मन में नहीं रही क्योंकि इस आदमी

में यह गलती मिल गई। खोज इसी की चलती थी कि कोई गलती मिल जाए। नहीं मिल जाए तो ईजाद कर लो ताकि तुम निश्चित हो जाओ अपनी मूढ़ता में और तुम्हें लगे कि मैं बिल्कुल ठीक हूं। आदमी धीरे-धीरे सबको इनकार कर देगा क्योंकि उनके प्रतीक, उनके चिह्न कहीं भी दिखाई नहीं पड़ते। पत्थर की मूर्तियां कब तक बताएंगी कि बुद्ध हुए थे और महावीर हुए थे और कागज पर लिखे गए शब्द कब तक समझेंगे कि क्राइस्ट हुए थे और कब तक तुम्हारी गीता बता पाएगी कि कृष्ण थे। नहीं, ज्यादा दिन यह नहीं चलेगा। हमें आदमी चाहिए जीसस-जैसे, कृष्ण-जैसे, बुद्ध-जैसे, महावीर-जैसे। अगर हम वैसा आदमी आनेवाले पचास वर्षों में पैदा नहीं करते हैं तो मनुष्य जाति एक अत्यंत अंधकारपूर्ण युग में प्रविष्ट होने को है। उसका कोई भविष्य नहीं है। जिन लोगों को भी लगता हो कि जीवन के लिए वह कुछ कर सकते हैं उनके लिए बड़ी चुनौती है और मैं तो गांव-गांव यह चुनौती देते हुए घूमूंगा और जहां भी मुझे कोई आंखें मिल जाएंगी लगेगा कि ये प्रकाश बन सकती हैं, इनमें ज्योति जल सकती है तो मैं अपना पूरा श्रम करने को तैयार हूं। मेरी तरफ से पूरी तैयारी है। देखना है कि मरते वक्त मैं भी यह न कहूं कि सौ आदमियों को खोजता था, वे मुझे नहीं मिले।

तीसरा प्रवचन

ज्ञान-गंगा

प्रेम से बड़ी इस जगत में दूसरी कोई अनुभूति नहीं है। प्रेम की परिपूर्णता में ही व्यक्ति विश्वसत्ता से संबंधित होता है। प्रेम की अग्नि में ही स्व और पर के भेद भस्म हो जाते हैं और उसकी अनुभूति उपलब्ध होती है, जो कि स्व और पर के अतीत है। धर्म की भाषा में इस सत्य की अनुभूति का नाम ही परमात्मा है। विचारपूर्वक देखने पर विश्व की समस्त सत्ता एक ही प्रतीत होती है। उसमें कोई खंड दिखाई नहीं पड़ते हैं। भेद और भिन्नता के होते हुए भी सत्ता अखंड है। जितनी वस्तुएं हमें दिखाई पड़ती हैं और जितने व्यक्ति वे कोई भी स्वतंत्र नहीं हैं। सबकी सत्ता परस्पर आश्रित है। एक के अभाव में दूसरे का ही अभाव हो जाता है। स्वतंत्र सत्ता तो मात्र समग्र विश्व की है। यह सत्य विस्मरण हो जाए तो मनुष्य में अहम का उदय होता है। वह स्वयं कोशेष सबसे पृथक और स्वतंत्र होने की भूल कर बैठता है, जब कि उसका होना किसी भी दृष्टि और विचार से स्वतंत्र नहीं है। मनुष्य की देह प्रति क्षण पंच भूतों से निर्मित होती रहती है, उनमें से किसी का सहयोग एक पल को भी छूट जाए तो जीवन का अंत हो जाता है। यह प्रत्येक को दृश्य है। जो अदृश्य है वह इसी भांति सत्य है। चेतना के अदृश्य द्वारों से परमात्मा का सहयोग एक क्षण को भी विलीन हो जाए तो भी मनुष्य विसर्जित हो जाता है। मनुष्य की यह स्वतंत्र-सी भासती सत्ता विश्व की समग्र सत्ता से अखंड और एक है। इसीलिए अहंकार मूल पाप है। यह समझना कि "मैं हूं", इससे बड़ी और कोई नासमझी नहीं है। इस "मैं" को जो जितना प्रगाढ़ कर लेता है, वह उतना ही परमात्मा से दूर हो जाता है। यह दूरी भी वास्तविक नहीं होती, इसलिए इसे किसी क्षण नष्ट भी किया जा सकता है। यह दूरी वैसी ही काल्पनिक और मानसिक होती है, जैसे कि स्वप्न में हम जहां वस्तुतः होते हैं, वहां से बहुत दूर निकल जाते हैं। और फिर स्वप्न से टूटते ही दूरी ऐसे विलीन हो जाती है जैसे रही ही न हो। वस्तुतः परमात्मा से दूर होना असंभव है, क्योंकि वह हमारी आधारभूत सत्ता है लेकिन विचार में हम उससे दूसरे हो सकते हैं। विचार स्वप्न का ही एक प्रकार है। जो जितने ज्यादा विचारों में है वह उतने ज्यादा स्वप्न में है। और जो जितने अधिक स्वप्न में होता है, वह उतना ही अहम-केंद्रित हो जाता है। प्रगाढ़ स्वप्नशून्य निद्रा में चूंकि कोई विचार नहीं रह जाते इसलिए अहम बोध भी नहीं रह जाता। सत्ता तो तब भी होती है किंतु विश्वसत्ता से एक होती है। "मैं" का भाव उसे तोड़ता और खंडित नहीं करता। लेकिन यह मिलने प्राकृतिक है और इससे विश्राम तो मिलता है, परंतु परम विश्राम नहीं। परमात्मा के सान्निध्य में पहुंच जाना ही विश्राम है। और "मैं" के सान्निध्य में आ जाना ही विकलता एवं तनाव है। "मैं" यदि पूर्ण शून्य हो जाए तो परम विश्राम उपलब्ध हो जाता है। परम विश्राम का ही नाम मोक्ष है। सुषुप्ति में एक प्रकृति आवश्यकता के निमित्त अहंकार-भाव से अल्पकाल के लिए मुक्ति मिलती है। जीवन के लिए यह अपरिहार्य आवश्यकता है, क्योंकि किसी भी दशा की अशांत, उत्तेजनापूर्ण स्थिति को बहुत देर तक नहीं रखा जा सकता। यही इस बात का प्रमाण है कि जो दशा सदा न रहे सके वह स्वाभाविक नहीं है। वह आती है और जाती है। जो स्वभाव है वह सदा बना रहा है। वह आता और जाता नहीं। अधिक से अधिक वह आवृत्त हो सकता है। अर्थात जब हम अहं भाव से भरे होते हैं तब हमारे ब्रह्म भाव नष्ट नहीं हो जाता है, अपितु मात्र ढक जाता है। जैसे ही "मैं" का तनाव और अशांति सीमा को लांघ जाता है वैसे ही उस ब्रह्म भाव में पुनः अनिवार्य रूपेण हमें विश्रांति लेनी होती है। यह विश्रांति बलात और अनिवार्य है। इसे हम स्वेच्छा से नहीं लेते हैं। यदि हम स्वेच्छा से "मैं" भाव से विश्रांति ले सकें तो अभूतपूर्व

क्रांति घटित हो जाती है। "मैं" भाव से स्वेच्छा से विश्रांति लेने का सूत्र प्रेम है। क्योंकि प्रेम की दशा अकेली दशा है जब हमारी सत्ता तो होती है, किंतु उस सत्ता पर "मैं" भाव आरोपित नहीं होता। सुषुप्ति बलात विश्राम है, प्रेम स्वेच्छित। इसीलिए प्रेम समाधि बन जाता है।

प्रेम क्या है? प्रेम उस भाव-दशा का नाम है, जब विश्व-सत्ता से पृथकत्व का भाव तिरोहित हो जाता है। समग्र की सत्ता में स्वयं की सत्ता का मिलन ही प्रेम है। यह सत्य भी है, क्योंकि वस्तुतः सत्ता एक है और जो भी है उसमें है। यह प्रेम प्रत्येक में सहज ही स्फूर्त होता है, लेकिन अज्ञान के कारण हम उसे राग में परिणत कर लेते हैं। प्रेम की स्फुर्णा को अहंकार पकड़ लेता है और वह स्वयं और समग्र की सत्ता के बीच सम्मिलन न होकर दो व्यक्तियों के बीच सीमित संबंध हो जाता है। असीम होकर जो प्रेम है सीमित होकर वही राग है। राग बंधन बन जाता है, जबकि प्रेम मुक्ति है। असल में जहां सीमा है वहीं बंधन है। राग का बुरा होना उसमें निहित प्रेम के कारण नहीं वरन उस पर आरोपित सीता के कारण है। राग असीम हो जाए तो वह प्रेम बन जाता है, विराग हो जाता है। ध्यान रखने की बात यही है कि प्रेम तो है परंतु उसमें कोई सीमा न हो। जहां सीमा आने लगे वहीं सचेत हो जाना आवश्यक है। वही सीमा संसार है। इस भांति क्रमशः सीमाओं को तोड़ते हुए प्रेम की ऊर्जा का विस्तार ही साधना है। जिस घड़ी उस जगह पहुंचना हो जाता है जहां सीमा नहीं है, तो जानना चाहिए कि परमात्मा पर पहुंचना हो गया। इसके विपरीत यदि प्रेम सीमित होना चला जाए और अंततः अहम अणु पर ही केंद्रित हो जाए तो जानना चाहिए कि परमात्मा से जितनी ज्यादा पृथकता हो सकती है वह हो चुकी है। यह अवस्था राग की चरम अवस्था है, जो कि अत्यंत दुख, परतंत्रता और संताप को उत्पन्न करती है, इसके विपरीत प्रेम के असीम होने की चित्त दशा है जो जीवन को अनंत आलोक और आनंद से परिपूरित कर देती है।

महर्षि रमण ने किसी ने पूछा कि सत्य को जानने के लिए मैं क्या सीखूं? श्री रमण ने कहा जो जानते हो उसे भूल जाओ। यह उत्तर बहुत अर्थपूर्ण है। मनुष्य का मन बाहर से संस्कार और शिक्षाएं लेकर एक कारागृह बन जाता है। बाह्य प्रभाव की धूल में दबकर उसकी स्वयं की दर्पण

जैसी निर्मलता ढक जाती है। जैसे किसी झील पर कोई आवृत्त हो जाए और सूर्य या चंद्रमा का प्रतिबिंब उसमें न बन सके ऐसे ही मन भी बाहर से सीखे गए ज्ञान से इतना आवृत्त हो जाता है कि सत्य का प्रतिफलित उसमें नहीं हो पाता। ऐसे मन के द्वार और झरोखे बंद हो जाते हैं। वह अपनी ही क्षुद्रता में सीमित हो जाता है, और विराट के संपर्क से वंचित। इस भांति बंद मन ही बंधन है। सत्य के सागर में जिन्हें संचरण करना है, उन्हें मन को सीखे हुए किसी भी खूंटे से बांधने का कोई उपाय नहीं है। तट से बंधे होना और साथ ही सागर में प्रवेश कैसे संभव है? एक पुरानी कथा है¬एक संन्यासी सूर्य निकलने के पूर्व ही नदी में स्नान करने उतरा, अभी अंधियारा था और भोर के अंतिम तारे डूबते थे। एक व्यक्ति नाव पर बैठकर पतवार चलाता था, किंतु नाव आगे नहीं बढ़ती थी। अंधेरे के कारण उसे वह सांकल नहीं दिखती थी जिससे नाव बंधी हुई थी। उसने चिल्ला कर संन्यासी से पूछा कि स्वामी जी, इस नाव को क्या हो गया है। उस संन्यासी ने कहा, मित्र पहले खूंटे से बंधी उसकी सांकल को तो खोलो। मनुष्य जो भी बाहर से सीख लेता है वह सीखा हुआ ज्ञान ही खूंटों की भांति उसके चित्त की नाव को अपने से बांध लेता है और आत्मा के सागर में उसका प्रवेश संभव नहीं हो पाता और यह बंधन उसे सरलता से दिखाई भी नहीं पड़ता। जिसे परमात्मा के ज्ञान को पाना हो उसे बाहर से सीखे गए अपने ज्ञान को छोड़ देना होगा। इस अवस्था को दिव्य अज्ञान (डिवाइन इगनोरेंस) कह सकते हैं। इसे साध लेने से बड़ी और कोई साधना नहीं है। कुछ भी जानने का भाव अहंकार को पुष्ट करता है। इसीलिए उपनिषद के ऋषियों ने कहा है कि जो कहे कि मैं जानता हूं तो जानना कि, वह नहीं जानता। जो जानते हैं उनका तो "मैं" खो जाता है। बाहर से आया हुआ ज्ञान "मैं" को भरता है; भीतर से जगा हुआ ज्ञान उसे बहा ले जाता है। ज्ञान को पाने की विधि है कि सब ज्ञान को छोड़ दो। "मैं" कोशून्य होने दो और चित्त को मौन। उस मौन और शून्यता में ही उसके दर्शन होते हैं जो कि सत्य है।

ज्ञान नहीं विचार सीखे जा सकते हैं। विचारों के संग्रह

से ही ज्ञान का भ्रम पैदा हो जाता है। विचार कम जो सकते हैं; विचार ज्यादा भी हो सकते हैं। ज्ञान न तो कम होता है और न ज्यादा होता है। या तो ज्ञान होता है या अज्ञानी ही विचार करता है। ज्ञानी विचरता नहीं, देखता है। जिसके आंख हैं उसे दिखाई पड़ता है। वह सोचता नहीं कि द्वार कहां है, वह तो द्वार को देखता है। जिसके पास आंख नहीं, वह सोचता है और टटोलता है, विचार टटोलना मात्र है। वह आंख का नहीं अंधे होने का प्रमाण है। बुद्ध, महावीर या ईसा विचारक नहीं है। हमने सदा ही उन्हें दृष्टा कहा है। वे जो भी जानते हैं वह उनके चिंतन का परिणाम नहीं, उनके दर्शन की प्रतीति है। वे जो भी करते हैं वह भी विचार का फल नहीं, उनकी अंतर्दृष्टि की सहज निष्पत्ति है। इस सत्य को समझना बहुत आवश्यक है। विचारों को संग्रह कहीं भी नहीं ले जाता। सभी प्रकार के संग्रह दरिद्रता को मिटाते नहीं, दबाते हैं। इसीलिए जो सर्वाधिक दरिद्र होते हैं संग्रह की इच्छा भी उनकी सर्वाधिक होती है। डायोजनीज ने सिकंदर को कहा था, "मैं इतना समृद्ध हूं कि मैं कुछ भी संग्रह नहीं करता। और तेरी दरिद्रता का अंत नहीं, क्योंकि इस पूरी पृथ्वी के साम्राज्य को पा लेने पर भी तुम संग्रह करोगे, इसीलिए जब सम्राटों को संग्रह में छिपी दरिद्रता के दर्शन हुए हैं तो उन्होंने दरिद्रता में छिपे साम्राज्य को स्वीकार कर लिया है।" क्या मनुष्य का इतिहास ऐसे भिखारियों से परिचित नहीं जिनसे सम्राट बड़े कभी नहीं होते। जो धन-संग्रह के संबंध में सत्य है वही सभी प्रकार के संग्रहों के लिए भी सत्य है। विचार-संग्रह भी उसका अपवाद नहीं। वाह्य संपत्ति के संग्रह से जो धनी है वह यदि दरिद्र है तोशास्त्रों के शब्दों से जो ज्ञानी है वह भी अज्ञानी ही है। शास्त्र से नहीं जब स्वयं से, और शब्द से नहीं जब अंतस से आलोक मिलता है तभी ज्ञान का अविर्भाव होता है।

ज्ञान का जन्म ध्यान से होता है और ध्यान का अर्थ है विचार छोड़कर चेतना में प्रतिष्ठित हो जाना। विचारों के प्रवाह का नाम मन है। जो इन विचारों के प्रवाह को देखता है उसका नाम चेतना है। विचार विषय है चेतना विषयी। विचार दृश्य है चेतना दृष्टा। विचार जाने जाते हैं, चेतना

जानती है। विचार बाहर से आते हैं, चेतना भीतर है। विचार पर है, चेतना स्व है। विचारों को छोड़ना है और चेतना में ठहरना है। सब धर्मों की साधना का सार यही है।

विचार-प्रवाह के सम्यक-निरीक्षण से तथा तटस्थ साक्षीभाव से मात्र उन्हें देखने से वे क्रमशः क्षीण हो जाते हैं। जैसे कोई बिल्ली चूहे को पकड़ती हो तो पकड़ने के पूर्व उसकी तैयारी पर ध्यान दें, कितनी सजग और कितनी शांत, कितनी शिथिल और कितनी तैयार! ऐसे ही स्वयं के भीतर विचार को पकड़ने के लिए होना पड़ता है। जैसे ही कोई विचार उठे, बिल्ली की भांति झपटें और उसे पकड़ लें, उसे उलटें-पलटें और उसका निरीक्षण करें। किंतु उसे सोचें नहीं, मात्र देखें। और तब पाया जाता है कि वह देखते-देखते ही वाष्पीभूत हो गया है। हाथ खाली और विचार विलीन हो जाता है। फिर शांत और सजग रहें। दूसरा विचार आएगा, उसके साथ भी यही करना है। तीसरा आएगा, उसके साथ भी यही। यह ध्यान का अयास है। जैसे-जैसे अयास गहरा होता है, वैसे-वैसे बिल्ली से डरते हैं, विचार वैसे ही ध्यान से डरते हैं। बिल्ली जैसे चूहों की मृत्यु है, ध्यान वैसे ही विचारों की मृत्यु है।

विचार की मृत्यु पर सत्य का दर्शन होता है। तब मात्र वही शेष रह जाता है जो "है"। वह सत्य है। वही परमात्मा है। उसे जानने में ही मुक्ति हैं और दुख एवं अंधकार का अतिक्रमण है।

मनुष्य के व्यक्तित्व में सबसे बड़ा अंतर्द्वंद्व उस मान्यता से पैदा होता है कि उसका शरीर और उसकी आत्मा विरोधी सत्य हैं। यह स्वीकृति आधारभूत रूप से मनुष्य को विभाजित कर देती है। फिर स्वभावतः इन दोनों विभाजित खेमों में संघर्ष और कलह का प्रारंभ हो जाता है। यह फिर न केवल मनुष्य के व्यक्तित्व में वरन समाज के व्यक्तित्व में प्रतिफलित होता है। इसी के आधार पर अब तक की सारी संस्कृतियां खंड संस्कृतियां हैं। अखंड और समग्र जीवन को समाविष्ट करनेवाली संस्कृति का अभी जन्म नहीं हुआ है। जब तक शरीर और आत्मा, पदार्थ और परमात्मा, संसार और मोक्ष के बीच विरोध की जगह सामंजस्य और समस्वरता स्थापित नहीं होती तब तक यह

हो भी नहीं सकता। या तो ऐसी विचार-दृष्टियां रही हैं जो आत्मा के निषेध पर शरीर-मात्र को ही स्वीकार करती हैं या फिर ऐसी परंपराएं जोशरीर के निषेध पर मात्र आत्मा की सत्ता मानती हैं। एक विचार वर्ग परमात्मा को असत्य मानता है और दूसरा संसार को माया और भ्रम। ये दोनों ही पूर्ण मनुष्य को स्वीकार करने से भय खाते हैं। वे उसी अंश को स्वीकार करते हैं जिसे पूर्व से स्वीकार करने की उन्होंने धारणा बना रखी है। जैसे कोई वस्त्र पहले बना ले और फिर मनुष्य को काट-छांट कर वस्त्र पहनाने की चेष्टा करे ऐसी ही उनकी चेष्टा है। धारणाएं पहले तय कर ली जाती है और फिर बाद में उन्हें मनुष्य को पहना दिया जाता है जबकि विवेकपूर्ण यही होगा कि हम पहले मनुष्य को उसकी समग्रता में विचार करें और फिर कोई जीवन-दर्शन बनाएं। विचार-संख्या या विचार-धाराएं महत्वपूर्ण नहीं¬महत्वपूर्ण मनुष्य की यर्थाथता है। धार्मिक और भौतिकवादी दोनों ही पूर्व पक्षों को छोड़कर यदि मनुष्य को देखा जाए तो न तो वह मात्र शरीर ही है और न मात्र आत्मा ही। वह तो अद्वय इकाई है। शरीर और आत्मा हमारे विचार के विभाजन हैं। वह तो अद्वय इकाई है। शरीर और आत्मा हमारे विचार के विभाजन हैं। मनुष्य तो अखंड है। वस्तुतः शरीर और आत्मा का जहां मिलन है वहीं मनुष्य की उत्पत्ति है। वे आत्माएं जो किसी अशरीरी मोक्ष में हों उन्हें हम मनुष्य नहीं कह सकते और न ही उन देहों को जो आत्मरहित हैं। मनुष्य आत्मा और शरीर का संगम है। इसलिए उसके संबंध में किसी भी पक्ष को दूसरे के निषेध पर स्वीकार कर लेना घातक ही सिद्ध होता है और ऐसी स्वीकृति से बनी हुई संस्कृति अधूरी, पंगु एवं एकांगी है। या तो सामान्य दैहिक वासनाओं का जीवन ही उसके लिए इति श्री हो जाती है या काम ही फिर उसके लिए केंद्र हो जाता है। फिर उकसे लिए और किसी चीज की सत्ता नहीं होती। स्वभावतः ऐसी दृष्टि शांति सत्य और उदात्त जीवन की ओर ऊर्ध्वगमन की सब संभावनाएं दभन लेती है। मनुष्य एक डबरे में बंद हो जाता है और सागर तक पहुंचने की गति, आकर्षण और अभीप्सा सभी खो जाते हैं। दूसरी आरे जो पदार्थ को अस्वीकार कर देते हैं वे भी शक्तिहीन हो

जाते हैं और भूमि से उनकी जड़ें टूट जाती हैं। उनका होना न होने की भांति हो जाता है। इस तरह के दोनों विकल्प अनुभव किए गए हैं और उनकी दोषपूर्ण स्थिति भी प्रत्यक्ष हो गई है। जिन संस्कृतियों ने जड़ को सब कुछ माना उनके पास संपदा आई, शक्ति आई लेकिन साथ ही अशांति और विनाश भी। तथा जिसने जड़ को कुछ भी न माना वे सदा शून्य, शक्तिरिक्त, दास और दरिद्र होते देखे गए। समय आ गया है कि इस भूल के प्रति हम सचेत हों और जड़तावादी या ब्रह्मवादी की अतियों से बचें। अति सदा वर्जित है और अनिवार्य रूपेण अति का अनुगमन असत्य में हो जाता है। सत्य सदा मध्य में है क्योंकि सत्य सदा संतुलन और संगति में है।

शरीर और आत्मा में किसी एक को नहीं चुनना है। पदार्थ और परमात्मा में से किसी एक के पक्ष में खड़ा नहीं होना है। क्योंकि जो जानते हैं वे विश्वसत्ता में दो का अनुभव ही नहीं करते हैं। जो जड़ की भांति प्रतीत हो रहा है वह भी मूलतः और अंततः वही है जो चैतन्य की तरह अनुभव में आता है। विश्वसत्ता एक है। उसकी अभिव्यक्तियां ही भिन्न हैं। जो दृश्य परमात्मा है वही संसार और जो अदृश्य संसार है वही परमात्मा है। यदि हम जड़ सत्ता का आत्यंतिक अनुसंधान करें तो वह अदृश्य में विलीन हो जाती है। विज्ञान ने यह किया और परमाणु के बाद वह जिन सत्ता-कणों पर पहुंचा है वे अब पदार्थ नहीं हैं, न ही वे दृश्य हैं वरन अदृश्य ऊर्जा मात्र में परिणत हो गए हैं। ऐसे ही जिन्होंने चेतना का आत्यंतिक अनुसंधान किया है उन्होंने पाया है कि चेतना ही दृश्य हो जाती है अर्थात अदृश्य आत्मशक्ति का भी साक्षात्कार हो जाता है और वह साक्षात्कार इतना प्रगाढ़ होता है कि उसके समक्ष पदार्थ ही असत्तावाद मालूम होने लगता है। इस सत्य को ध्यान में रखें तो ज्ञात होगा कि जो दृश्य है वह अदृश्य ही है और जो अदृश्य है वह भी दृश्य है। संसार और मोक्ष भिन्न नहीं, अभिन्न हैं। अज्ञान में जो संसार मालूम होता है ज्ञान में वही मोक्ष हो जाता हैं। अंधेरे में जो पदार्थ मालूम होता है आलोक में वही परमात्मा में परिणत हो जाता है। दोनों के बीच एकता है और इस एकता का अनुभव केवल वही कर

पाते हैं जो दोनों के बीच अतिवादी द्वंद्व से नहीं वरन दोनों के मध्य संतुलन से प्रारंभ करते हैं।
हमने अतियों में जीकर देख लिया है। वह प्रयोग किसी भी दिशा में सहल नहीं हुआ। अब अन-अति का प्रयोग करने का समय आ गया है। मनुष्य को उसकी पूर्णता को स्वीकार कर संस्कृति का निर्माण करना है।
मनुष्य स्वरूपतः शुभ है या अशुभ? जो उसे स्वरूपतः अशुभ मान लेने हैं उनकी दृष्टि अत्यंत निराशाजनक और भ्रांत है। क्योंकि जो स्वरूपतः अशुभ हो उसके शुभ की संभावना समाप्त हो जाती है। स्वरूप का अर्थ ही यही है कि उसे छोड़ा नहीं जा सकता है। जो सदा अनिवार्य रूप से साथ ही वही स्वरूप है। यदि मनुष्य स्वरूप से ही अशुभ हो तब तो उसे शुभ का विचार भी नहीं उठ सकता।
इसलिए हम मनुष्य को स्वरूपतः शुभ मानते हैं। अशुभ अच्छादन है। यह दुर्घटना-मात्र है। जैसे सूर्य अपने ही द्वारा पैदा की हुई बदलियों में छिप जाता है, वैसे ही मनुष्य की चेतना में जोशुभ है वह उसकी अंतर्निहित स्वतंत्रता के दुरुपयोग से आच्छादित हो जाता है। चेतना स्वरूपतः शुभ और स्वतंत्र है। स्वतंत्रता के ही कारण अशुभ भी चुना जा सकता है। तब एक क्षण को अशुभ आच्छादित कर लेता है। जिस क्षण अशुभ हो रहा है उसी क्षण वह आच्छादन रहता है। उसके बाद आच्छादन तो नहीं, मात्र-स्मृति रह जाती है। शुद्ध वर्तमान में स्मृति शून्य चेतना सदा ही शुभ में प्रतिष्ठित है अर्थात प्रत्येक व्यक्ति अपनी शुद्ध वर्तमान सत्ता में शुभ और निर्दोष है। जो व्यक्ति सोचता है कि मुझसे पाप हुआ उसे भी समझना आवश्यक है कि पाप उसकी अतीत स्मृति है। क्योंकि जो हो गया है उसका ही सिंहावलोकन चित्त कर पाता है। जो है यदि चित्त उसके प्रति सजग और जागरूक हो तो चित्त मिट जाता है और मात्र चेतना रह जाती है। यह चेतना नित्य शुभ है। स्मृति और कामना, अतीत और भविष्य यही चेतना के बंधन हैं। इनसे जो मुक्त है वही स्वरूप में पहुंच पाता है। स्वरूप सदा निर्दोष है।
यह स्मरणीय है कि मैं स्वरूपतः शुभ हूं। यह प्रतीत और प्रत्यय कि मैं सदा निर्दोष हूं, शुभ और निर्दोष जीवन के

लिए मुख्य आधार है। कोई यह न सोचे कि इस भांति तो अहंता प्रगाढ़ होगी क्योंकि इस प्रत्यय में मेरी ही नहीं समस्त चेतनाओं की निर्दोषता समाविष्ट है। प्रत्येक चेतना ही अपनी निज सत्ता में शुभ है। यह बोध स्वयं तथा सर्व के लिए सदभाव उत्पन्न करता है। स्वयं को पापी मानना पाप करने से ज्यादा बुरी बात है। क्योंकि जो निरंतर यह भाव करता है कि मैं पापी हूं वह अपने ही भाव में सम्मोहित हो जाता है। कूए ने बड़े वैज्ञानिक आधारों पर यह सुप्रतिष्ठित कर दिया है कि हम जो भाव निरंतर करते हैं क्रमशः हम वैसे ही होते जाते हैं। बुद्ध ने तो कहा ही था, विचार ही व्यक्तित्व बन जाता है। विचार और भाव में जो तरंगें उठती हैं वे ही धीरे-धीरे हमारा व्यवहार बन जाती हैं। जो स्वयं पाप, पतित और अपराधी होने के भाव करता रहता है वह उन्हीं में जकड़ जाता हैं। फिर जो स्वयं को पापी समझता है वे शेष लोगों को भी पापी समझता है। उसके सोचने के मापदंड वे ही हो जाते हैं। यदि पाप एक सत्य दिखाई पड़ने लगे तो क्रमशः परमात्मा एक असत्य दिखाई पड़ने लगता हैं। पाप से ऊपर उठने की संभावना ही परमात्मा के होने का प्रमाण है। उस संभावना से ही जीवन के अंधकार में आलोक की किरण फूटती है।

यह भी स्मरणीय है कि पाप के ऊपर हम तभी उठ सकते हैं कि हमारे भीतर निरंतर ही पाप के ऊपर कुछ हो। अर्थात यदि हमारी चेतना में पाप से अस्पर्शित कुछ भी नहीं है तो फिर पाप के बाहर जाने का कुछ उपाय ही नहीं रह जाता। फिर तो पाप के ऊपर जाना वैसे ही असंभव है जैसे स्वयं जूते के बंधों को पकड़कर स्वयं को उठाने का प्रयास। और यदि चेतना सर्वांशतः पाप हो जाए तो उसे पाप का बोध भी नहीं रह जाएगा। जिस पाप का बोध होती है वह निरंतर पाप के बाहर है। वह बोध ही हमारी शक्ति, सुरक्षा और परमात्मा तक पहुंचने का आश्वासन है। पाप आते हैं और चले जाते हैं। पुण्य भी आते हैं और चले जाते हैं। पाप भी कम हैं पुण्य भी कम हैं। किंतु जिस पर वे जाते हैं वह निरंतर ही बना रहता है। वह यदि पाप से ग्रसित हो जाए तो फिर पुण्य नहीं आ सकता और यदि पुण्य से ग्रसित हो जाए तो पाप नहीं आ सकता। वह किसी से भी ग्रसित

नहीं होता। वह सदैव अस्पर्शित है। इस साक्षी का, इस आत्मा का संकल्पपूर्व तक स्मरण समस्त कर्मों के बीच उसका भान सब कुछ करते हुए, सोते, उठते बैठते, व्यक्ति को अपे स्वरूपतः निर्दोष और शुभ होने का अवबोध करा देता है। इस बोध की दशा में ही प्रकृति का अतिक्रमण एवं परमात्मा का अनुभव होता है।

मनुष्य के चित्त-विश्लेषण से जो केंद्रीय तत्त्व उपलब्ध होता है वह है परिग्रह की दौड़। चाहे यश हो, चाहे धन, चाहे ज्ञान हो, लेकिन प्रत्येक स्थिति में मनुष्य किसी न किसी भांति अपने को भरना चाहता है और संग्रह करता है। संग्रह न हो तो वह स्वयं को स्वत्वहीन अनुभव करता है और संग्रह हो तो उसे लगता है कि मैं भी कुछ हूं। संग्रह, शक्ति देता हुआ मालूम पड़ता है। और संग्रह स्व या अहं को भी निर्मित करता है। इसलिए जितना संग्रह उतनी शक्ति और उतना अहंकार। इस दौड़ का क्या मूलभूत कारण और उसे बिना समझे जो दौड़ के विरोध में दौड़ने लगते हैं वे ऊपर से भले ही अपरिग्रही दिखाई पड़ें, अंतस मग उनके भी परिग्रह ही केंद्र होता है। जो व्यक्ति स्वर्ग के लिए, बैकुंठ के लिए या बहिश्त के लिए संपत्ति और संग्रह छोड़ देते हैं उनका छोड़ना कोई वास्तविक छोड़ना नहीं है। क्योंकि जहां भी कुछ पाने की आकांक्षा है वहां परिग्रह है। फिर चाहे यह आकांक्षा परमात्मा के लिए हो या चाहे मोक्ष के लिए, चाहे निर्वाण के लिए। वासना परिग्रह की आत्मा है। लोभ ही उसका स्वांस-प्रस्वांस है। इस भांति धन को जो धर्म या पुण्य के लिए छोड़ते हैं वे भी किसी और बड़े धन के पाने की अभिलाषा रखते हैं। यही कारण है कि यदि हम भिन्न-भिन्न धर्मों द्वार कल्पित स्वर्ग पर विचार करें तो उसमें हमें मनुष्य के लोभ का ही विस्तार उपलब्ध होगा। कामनाओं और वासनाओं ने ही उसका सृजन किया है। जो सुख और ऐंद्रिक तृप्ति इस लोक में चाही जाती है उसकी ही पूर्ति के वहां और भी सुलभ साधन प्रस्तुत किए गए हैं। कामधेनु है या कल्पवृक्ष, चिरयौवना अप्सराएं हैं या हूरें, शराब की नदियां हैं और काम भोग के सभी उपकरण हैं। दान-पुण्य और त्याग से यदि यही सब उपलब्ध करना है तो ऐसे दान, पुण्य, त्याग को आत्म-वंचना ही मानना होगा।

यह वासना की ही विकृत रूप है और परमात्मा के नाम से परिग्रह की ही तृप्ति है। यह भी हो सकता है कि कोई न स्वर्ग चाहता है, न अन्य तरह की कामनापूर्ति, लेकिन इन सबसे मुक्ति चाहता हो। किंतु बहुत गहरे में देखने पर यह भी चाह की अत्यंतिक रूप है। वासनाओं से यदि दुःख अनुभव होता है तो उनसे मुक्ति चाहने में भी सुख की वासना ही उपस्थित है। वस्तुतः त्याग किसी भी भांति की इच्छा के साथ संभव नहीं है।

परिग्रह की इतनी दौड़ क्यों है। उसे छोड़ते हैं तो भी वह उपस्थित रहता है। त्याग में भी वह खड़ा है, भोग में भी। तब क्या उससे छुटकारा संभव नहीं है? क्योंकि जो उससे छूटने की कोशिश करते हैं वे परिवार को तो छोड़ते हुए अनुभव करते हैं लेकिन खाई में गिरते दिखाई पड़ते हैं। उनका त्याग योग का ही शीर्षासन करता हुआ रूप मालूम होता है। गृहस्था और तथाकथित संन्यासी में कोई आधारभूत अंतर नहीं होता। गृहस्थ जिस ओर भागता है संन्यासी ठीक उसके विपरीत भागता हुआ मालूम होता है। इससे संन्यासी गृहस्थ से भिन्न है ऐसी भ्रांति पैदा होती है, लेकिन विपरीत दिशाओं में भागते हुए भी उनकी मूल तृष्णा में कोई भेद नहीं है। विपरीत तथाकथित त्यागवादी और अधिक काम और लोभ से ग्रसित मालूम होंगे क्योंकि क्षणिक लौकिक सुख उन्हें तृप्त नहीं कर पाते, उनकी अभीप्सा तोशाश्वत सुख के लिए है। और यदि उस शाश्वत सुख के लिए वे इन क्षणिक सुखों को लात मार देते हों तो न तो यह अलोभ है न त्याग, न अपरिग्रह। यह तो किसी भावी लाभ की आकांक्षा में संपत्ति विनियोग (इनवेस्टमेंट) है।

साधारणतः परिग्रह को छोड़ना कठिन है, जब तक कि उसके उदभाव के मूल कारण को न जाना जा सके। मूल कारण है स्वयं से अपरिचित होना। इस अपरिचय और अज्ञान से आत्म अविश्वास उत्पन्न होता है। आत्म अविश्वास से असुरक्षा अनुभव होती है। असुरक्षा की भावना से बचने के लिए परिग्रह की दौड़ प्रारंभ होती है। स्वयं का बोध न हो तो संपत्ति और संग्रह से सुरक्षित होने के अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं रह जाता। स्वयं का

होना है अज्ञात। वस्तुएं हैं ज्ञात। जो ज्ञात है वह उपलब्ध करना सरल है उसे जीतना आसान है। और उसके द्वारा जो अभाव भीतर काटता है उससे भ्रांति ही सही लेकिन छुटकारा मिलता हुआ अनुभव होता है। स्वयं के भीतर देखें तो कुछ नहीं मालूम होता है, वहां तो एक शून्य है, गहन रिक्तता है, यह रिक्तता भरे बिना चैन नहीं। किसी न किसी भांति इसे भरना ही है। अभाव के साथ जीया नहीं जा सकता। रिक्तता घबड़ाती है और मृत्यु मालूम होती है। उससे बचने के लिए ही परिग्रह की शरण लेनी पड़ती है। संपत्ति, यश, पद, प्रतिष्ठा, इन सबमें उस अभाव से पलायन ही हम खोजते हैं लेकिन अभाव है आंतरिक और संपत्ति है बाह्य। संपत्ति कितनी ही इकट्ठी करते जाएं अभाव उससे नष्ट नहीं होता है। भीतर का अभाव भीतर के भाव से ही नष्ट होगा। बाहर की कोई भी उपलब्धि उसे भरने में केवल इस कारण ही असमर्थ है कि वह बाहर की है। यही कारण है कि परिग्रह की दौड़ और के पागलपन से पीड़ित रहती है। जो मिल जाता है वह काम करता हुआ मालूम नहीं होता। अभाव वैसे ही का वैसा मालूम होता है। कितना ही अभाव के भोजन दें उसका पेट भरता नहीं। वह मुंह बाए ही खड़ा रहता है। स्वभावतः बुद्धि कहती है और दो, इतने से नहीं हुआ तो और करो और इस भांति एक अंतहीन चक्कर चलता है। जिसमें हर पड़ाव पर लिखा होता है और आगे और ऐसा कोई पड़ाव नहीं है जहां यह नहीं लिखा है। परिग्रह की वृत्ति स्वयं की रिक्तता से पैदा होती है, तो उचित है कि इस रिक्तता को हम जानें और पहचानें। रिक्तता के ज्ञान के लिए रिक्तता में जीवन आवश्यक है। न तो उसे भरें और न उससे भागें। वरन उसमें कूद जावें ताकि उसका पूरा अनुभव हो सके। यही है योग। रिक्तता में छलांग समाधि है, शून्य में जीना साधना है। जो व्यक्ति स्वयं की इस शून्यता में प्रवेश का साहस करता है वह प्रविष्ट होकर पाता है कि जो रिक्तता अनुभव होती थी वही आत्मा है और दूर से जोशून्य-जैसा भागता था वही परम सत्ता है। यह अनुभव अभाव से मुक्त कर देता है। परमात्मा उपलब्ध हो, परम सत्ता का साक्षात्कार हो तो परिग्रह की वृत्ति सहज ही विलीन हो जाती है। जैसे जाग जाने पर स्वप्न

नहीं है वैसे ही स्वयं में आने पर बाहर की कोई दौड़ शेष नहीं रह जाती। जीवन की दो ही दिशाएं हैं परिग्रह या परमात्मा। स्वयं का अभाव है दोनों दिशाओं का प्रारंभ बिंदु। उससे भागिए तो परिग्रह की गति शुरू होती है उसमें डूबिए तो परमात्मा उपलब्ध होता है।

मनुष्य में और पशु में जन्म और मृत्यु की दृष्टि से कोई भेद नहीं है। न तो मनुष्य को ज्ञात है कि वह क्यों पैदा होता है और क्यों मर जाता है और न पशु को। लेकिन मनुष्य को यह ज्ञात है कि वह पैदा होता है और मरता है। यह ज्ञान पशु को नहीं है। और यह ज्ञान बहुत बड़ा भेद पैदा करता है। इसके कारण ही मनुष्य पशुओं के बीच होते हुए भी पशुओं से भिन्न हो जाता है। वह जीवन पर विचार करने लगता है। जीवन में अर्थ और प्रयोजन खोजने लगता है। वह मात्र होने से तृप्त नहीं होता वरन सप्रयोजन और सार्थक रूप से होना चाहता है। इससे ही जीवन उसे जीना ही न होकर एक समस्या और उसके समाधान की खोज बन जाता है। स्वाभाविक है कि इससे तनाव, अशांति और चिंता पैदा हो। कोई पशु न तो चिंतित है, न अशांत। मनुष्य अकेला प्राणी है जिसमें ऊब प्रकट होती है। और वही अकेला है जो कि हंसता है और रोता है। न तो किसी और पशु को किसी भांति उबाया ही जा सकता है न हंसाया ही। पशु जीते हैं सहज और सरल। कोई समस्या वहां नहीं है। भोजन, छाया या इस तरह की तात्कालिक खोजें हैं लेकिन जीवन का कोई अनुसंधान नहीं है। न कोई अतीत की स्मृति है और न भविष्य का विचार। वर्तमान ही सब कुछ है। और वर्तमान का यह बोध भी हमारे विचार में है क्योंकि जिनके लिए अतीत और भविष्य नहीं है उनके लिए वर्तमान भी नहीं है। समय या काल मानवीय घटना है और इसीलिए जो भी व्यक्ति मानवीय चिंताओं से मुक्त होना चाहता है वह किसी न किसी रूप में समय को भूलने या मिटाने की चेष्टा करता है। भूलने के उपाय हैं निद्रा, नशा, सेक्स, या इसी तरह की और मूर्च्छाएं। मिटाने का उपाय है समाधि। लेकिन जब तक चित्त समय में है तब तक वह चिंता के बाहर नहीं होता है। समय ही चिंता है। उसका बोध भार है। पशु निर्भार, निर्बोध ज्ञात होते हैं।

मनुष्य की यह विशेष स्थिति कि वह सृष्टि का अंग होते हुए भी सामान्य रूप से अन्य अंगों की भांति अचेत अंग नहीं है, उसके जीवन में असामान्य और असाधारण उलझाव खड़े कर देती है। जीवन किसी न किसी रूप में इस दबावग्रस्त स्थिति के अतिक्रमण की खोज चलती है। मनुष्य सृष्टि का अचेतन अंग तो नहीं हो पाता। होश में रहते यह असंभव है। वह पशु और पौधों के निश्चिंत जीवन को नहीं पा सकता है। उसकी चेतना ही इन द्वारों को वर्जित किए हुए है। फिर अतिक्रमण का मार्ग एक ही है कि किसी भांति सृष्टा हो जाए। सृष्टि के साथ सम्मिलन की भूमिका है अचेतना और सृष्टा के साथ सम्मिलन की संभावना है संपूर्ण चेतना। मनुष्य है मध्य में। न वह पूरा अचेतन है और न पूरा चेतन। पशुओं को वह पीछे छोड़ आया है और प्रभु होना अभी दूर है। चेतना जितनी आलोकित होती जाए और अचेतना का अंधकार जितना दूर हो उतना ही वह परमात्मा के निकट पहुंचता है। प्रकृति और परमात्मा, अचेतना और चेतना यही दो ध्रुव हैं जिसके मध्य पतन है या प्रगति है। दोनों ही ध्रुव मनुष्य को खींचते हैं और दस से ही उसमें संताप और चिंता का जन्म होता है। छोटे-मोटे रूप में भी यदि वह सृष्टा बन जाता है तो आनंद अनुभव करता है। काव्य हो या चित्र हो या मूर्ति हो इनका निर्माता होकर भी वह सृष्टा के जगत के अंशभूत भागीदार हो पाता है। विज्ञान के अविष्कार भी उसकी चेतना को इसी बिंदु पर ले आते हैं। मां या पिता जो संतति को पाकर जो खुशी है वह भी सृष्टा होने की खुशी है। इसी कारण जो किसी की भांति का सृजन नहीं कर पाते उनकी पीड़ा अनंतगुनी बढ़ जाती है। सृजन जीवन में न हो तो किसी भी भांति की आनंद-अनुभूति कठिन है। एक विकल्प और हैः वह है विनाश का। उससे भी मनुष्य अचेतन मिटाने की क्षमता का अनुभव करते हैं। वह भी बनाने की क्षमता का दूसरा पहलू है। तैमूर लंग, हिटलर या स्टेलिन या अन्य युद्धखोरों का जो सुख है वह सृष्टि के अचेतन अंग-मात्र होने के अतिक्रमण की चेष्टा है। जो सृजन नहीं कर पाते वे विनाश की ओर झुक जाते हैं। समाधान भिन्न और विपरीत है लेकिन समस्या दोनों की एक है। निश्चय ही सृजन का

आनंद और विनाश के सुख में मूलभूत अंतर है। दोनों स्थितियों में व्यक्ति प्रकृति से दूर हटता है लेकिन पहली स्थिति में वह परमात्मा के निकट पहुंच जाता है और दूसरी स्थिति में कहीं नहीं पहुंचता। पहली स्थिति में स्वयं से मुक्त हो जाता है, दूसरी स्थिति में मात्र अहंकार में केंद्रित। इसीलिए विनाश की दिशा में जो सुख-जैसा आभास था वह अंत में चरम दुःख सिद्ध होता है, क्योंकि स्वयं की अहंता में बंद हो जाने से बड़ा और कोई नरक नहीं है। जीवन का जो भी विकास और विस्तार है वह स्वयं से मुक्त हो समग्र संयुक्त होने में है। यह अवस्था केवल सतत सृजनशील मन ही उपलब्ध कर पाता है। सतत सृजनशील इसलिए कि यदि अपने ही किसी सृजन पर व्यक्ति रुक जाए तो वह भी अहंकार का पोषण हो जाता है। सतत सृजन का अर्थ है जो हमसे निर्मित हुआ है उससे मुक्त होते जाना। जिस दिन सृजन ही रह जाता है और कृतत्व-भाव विलीन हो जाता है उस दिन ही, उस क्षण ही, व्यक्ति मिटता है, अहंकार की छाया विसर्जित होती है, समष्टि के द्वार खुलते हैं और ब्रह्म में चेतना का प्रवेश होता है। यह प्रवेश ही आनंद में, आलोक में और अमृत में प्रतिष्ठा है।
प्रेम क्या है, इसके समझने के पूर्व यह जानना आवश्यकता है कि प्रेम क्या नहीं है, क्योंकि जिसे हम प्रायः प्रेम के नाम से जानते हैं वह और कुछ भले ही हो, प्रेम कतई नहीं है। मानव के संबंधों में भी हमें अधिकतर राग, लालसा, आसक्ति दिखाई देती है, वह प्रेम नहीं कहा जा सकता। प्रेम की विकृति ही राग, लालसा और आसक्ति है। पहले काम को लीजिए जो राग से उत्पन्न होता है। काम प्रेम नहीं है। काम या यौन-आकर्षण तो प्रकृति का संतति उत्पादन के लिए प्रयोग किया गया सम्मोहन है। यथार्थ में वह वैसी मूर्च्छा है, जैसी शल्य चिकित्सक शल्य क्रिया के पूर्व उपयोग में लाता है। इस मूर्च्छा के अभाव में प्रकृति का संतति-क्रम चलना संभव नहीं है। इसे ही जो प्रेम समझ लेते हैं वे भ्रांति में पड़ जाते हैं। यह मूर्च्छा मनुष्य में ही नहीं वरन समस्त पशु-पक्षी, कीट-पतंग में भी ऐसी ही पाई जाती है। कई जीवधारियों की तो संभोग के बाद मृत्यु हो जाती है। शहद की मक्खी का दृष्टांत लीजिए। इस मक्खी

के छत्ते में इन मक्खियों की एक रानी रहती है। इस रानी से अनेक नर मक्खियां संभोग की इच्छा रखते हैं। अंत में जिस नर को वह रानी पसंद करती है उसके साथ उड़ती है और संभोग होने के पश्चात नर का प्राणांत हो जाता है। फिर भी प्रकृति का सम्मोहन इतना गहरा है कि सामने खड़ी मृत्यु भी यौन-आकर्षण से प्राणियों को नहीं रोक पाती। जहां तक इस प्रकार के प्रेम का संबंध है मनुष्य के विषय में, वह पशु-पक्षियों कीटादि से भिन्न नहीं है। प्रेम के संबंध में विचार करते समय यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि यौन-आकर्षण को ही प्रेम न समझ लिया जाए। यथार्थ में यह राग का सबसे बड़ा रूप है। सत्य तो यह है कि राग की यह शक्ति जिस मात्रा में वासना से मुक्त हो जाती है उतनी ही मात्रा में उसका रूपांतरण प्रेम में होता है। प्रेम राग नहीं, वरन राग शक्ति का दिव्य रूपांतरण है।

राग के बाद लालसा आती है। हम लालसा और प्रेम को भी एक ही समझ बैठे हैं। लालसा में युद्ध-अधिकार की भावना रहती है। मनुष्य शक्ति पिपासु है प्रेम के नाम से भी। इसलिए अधिकार और स्वामित्व खोजा जाता है। पिता-पुत्र, मित्र-मित्र, पति-पत्नी आदि के अधिकांश संबंधों में यह अधिकार की भावना दृष्टिगोचर होती है, इसलिए अनेक बार हमें पिता-पुत्र, मित्र-मित्र और पति-पत्नी तक के संबंध टूटते दिखाई पड़ते हैं।

पति को अपने स्वामित्व का बड़ा ध्यान रहता है और पत्नी दासी बन जाती है। पत्नी भी ऊपर से चाहे स्वयं को दासी कहे, परंतु बहुधा भीतर से उसमें भी मालिक बनने का भाव सक्रिय रहता है। मालकियत की यह प्रतिस्पर्धा चाहे वह पिता-पुत्र में हो, चाहे मित्र-मित्र में और पति-पत्नी में वहुजा संघर्ष और कलह बन जाती है। प्रेम की पहली शर्त है निरहंकारिता। मनुष्य की सबसे बड़ी और गहरी भावना है अहंकार। जहां अंधकार नहीं वहीं प्रेम का जन्म है। लालसा में अहंकार सबसे प्रधान वस्तु रहती है।

अहंकार केंद्रित जीवन में जिसे हम प्रेम समझते हैं, वह प्रेम न होकर लालसा होती है। जिसके प्रति यह लालसा रहती है, वह भी अनेक बार इसे प्रेम समझकर भ्रांति में पड़ जाता है। वस्तुओं और साधनों से प्रेम नहीं किया जा

सकता। उनको तो बस उपयोग और शोषण ही होता है, हां उन्हें प्रेम बतलाया जा सकता है वैसे ही जैसे दासता के युगों में मालिक गुलामों को जीवन सुविधाएं देता था ताकि वे मर जाएं। शायद वे मालिक अपने दासों के प्रति प्रेम भी जतलाते रहे हों। जैसा उनका प्रेम रहा होगा वैसी ही यह लालसा है।

इस प्रकार रोग, लालसा और आसक्ति चाहे प्रेम दिखें पर वह यथार्थ में प्रेम नहीं है। जो व्यक्ति स्वयं को निपट शून्य बना लेता है उससे और केवल उससे ही प्रेम की ऊर्जा अभिव्यक्त होती है। प्रेम, व्यष्टि और समष्टि दोनों के प्रति हो सकता है। जिनके हृदय में प्रेम है, वह चाहे व्यष्टि के प्रति हो या समष्टि के, वह प्रेम पात्र के लिए ही सब कुछ करता है। उसकी समस्त इच्छा प्रेम-पात्र को सुख देने में रहती है। उस प्रेम के बदले में वह कुछ नहीं चाहता है। प्रेम बेशर्त दान है।

और जब ऐसा प्रेम समष्टि से हो जाता है तब उसे विश्व प्रेम की सत्ता मिल जाती है।

इस प्रेम के लिए स्वयं को मिटाना आवश्यक है जो कठिनतम कार्य है। हम तो स्वयं को भरने और बनाने में लगे रहते हैं। इसलिए यह कोई आश्चर्य नहीं है कि हमारे जीवन राग, लालसा और आसक्ति से भरे हों तथा प्रेम से रहित। और जहां प्रेम नहीं वहां दुख है।

प्रेम से उदात्त आनंद से बढ़ कर निर्दोष और दिव्य कोई दूसरी अनुभूति नहीं है। इस सृष्टि के सर्व श्रेष्ठ प्राणी के अनुभव में प्रेम ही सर्व श्रेष्ठ अनुभव है। प्रेम की गहराइयों में ही उसकी चेतना पदार्थ का अतिक्रमण करती है और प्रभु के द्वार पर उपस्थित होती है। प्रेम ही प्रभु का द्वार है। प्रेम है रहस्य और अबूझ। उसे मनुष्य जानता भी है और नहीं भी जानता, परंतु अनजाने भी उसे उसका अनुभव होता है। प्रेम के समक्ष परमात्मा भी प्रत्यक्ष हो जाता है। इसी से प्रेम परम कला है और प्रेम ही परम प्रार्थना भी। मैं तो कहता हूंः प्रेम ही परमात्मा है।

साधारणतः जिसे ज्ञान कहते है वह ज्ञान द्वैत के ऊपर नहीं ले जाता। जहां दो हैं वहीं ऐसा ज्ञान संभव है। ज्ञेय ज्ञात हो पृथक ही बना रहता है। इसलिए यह ज्ञान एक

बाह्य संबंध है। ज्ञेय ज्ञात हो पृथक ही बना रहता है। इसलिए यह ज्ञान एक बाह्य संबंध है, यह अंदर प्रवेश नहीं कर पाता। ज्ञाता ज्ञेय के कितने ही निकट पहुंच जाए फिर भी दूर ही बना रहता है। इस ज्ञान की संभावना के लिए दूरी अनिवार्य और अपरिहार्य है। इसलिए ऐसा ज्ञान मात्र परिचय ही हो पाता है, वस्तुतः ज्ञान नहीं बन पाता। मनुष्य के लिए बड़ी से बड़ी पहेलियों में से एक यही है कि ज्ञान बिना दूरी के संभव नहीं और जहां दूरी है वहां सच्चा ज्ञान असंभव है।

क्या यह संभव है कि दूरी न हो और ज्ञान संभव हो जाए? यदि वह संभव नहीं है तो सत्य कभी भी नहीं जाना जा सकता। और साधारणतः यह संभव नहीं दीखता, क्योंकि जो भी हम जानते हैं, वह जानने के कारण ही हमसे पृथक और अन्य हो जाता है। ज्ञान ज्ञाता और ज्ञेय को तोड़ देता है। वह जोड़ने वाला सेतु नहीं वरन पृथक करने वाली खाई है। और यही कारण है कि जिन्हें हम ज्ञानी कहते हैं वे अति अहंकार युक्त हो जाते हैं। जैसे-जैसे उनका ज्ञान बढ़ता है, वैसे-वैसे वे विश्वसत्ता से टूटते जाते हैं। इस भांति यदि कोई सर्वज्ञ हो जाए तो वह अपने अहं बिंदु पर समग्र रूपेण केंद्रित हो जाएगा। और जहां जितना अहंकार है उतना ही अंधकार है। ज्ञानी होने का बोध अहंकार की सूचना है। और सर्वज्ञ होने की धारणा परम अज्ञान की स्थिति है। सुकरात को परम ज्ञानी कहा गया है। क्योंकि उसने कहा है कि मैं इतना ही जानता हूं कि कुछ भी नहीं जानता। उपनिषद की घोषणा करते हैं कि अज्ञान तो अंधकार में ले ही जाता है, लेकिन ज्ञानी महा अंधकार में ले जाते हैं। ईशोपनिषद का इस संबंध में स्पष्ट कथन हैः "जो धन अविद्या में निरंतर मग्न हैं, वे डूब जाते हैं घने तमसांध में। जो मनुज विद्या में सदा रसमाण हैं, वे और धन तमसांध में मानो धंसे। जो मनुज करते हैं निरोध उपासना, वे डूब जाते हैं घने तमसांध में। जो जन सदैव विकास में रसमाण हैं, वे और धन समसांध में मानो धंसे।"

अहंकार ही अज्ञान है। इसलिए जिस ज्ञान से अहंकार पोषित होता हो, वह प्रच्छन्न रूप में अज्ञान ही है। फिर क्या ऐसा भी कोई ज्ञान संभव है, जो अज्ञान न हो, अर्थात क्या

ऐसा ज्ञान संभव है जिसमें अहंकार न हो? दूसरे शब्दों में क्या ज्ञान ज्ञाता और ज्ञेय को जोड़ने वाला सेतु भी हो सकता है? निश्चय ही ऐसा ज्ञान संभव है और उस ज्ञान का नाम ही प्रेम है। प्रेम ज्ञान का ऐसा मार्ग है जहां अहंकार को मिटाकर प्रवेश मिलता है। प्रेम का अर्थ है स्वयं के और सर्व के बीच की दूरी को मिटाना। वह दूरी उसी मात्रा में विलीन होने लगती है जिस मात्रा में मैं का भाव नष्ट हो जाता है। रूमी की एक कविता है¬जिसमें प्रेमी ने प्रेयसी के द्वार पर दस्तक दी है। भीतर से पूछा गया¬कौन है? प्रेम ने कहा मैं तेरा प्रेमी। लेकिन फिर भीतर से कोई ध्वनि न आई और न दरवाजे खुलते मालूम पड़े। प्रेमी ने चिल्लाकर पूछा कि क्या कारण है कि द्वार नहीं खुलते हैं। उत्तर मिला प्रेम के द्वार उसके लिए ही खुलते हैं, जिसने वैसी पात्रता अर्जित कर ली हो। यह सुन प्रेमी चला गया और वर्षों की तपश्चर्या के बाद पुनः उस द्वार पर आया। फिर पूछा गया कौन है? इस बार उत्तर भिन्न था। प्रेमी ने कहा¬मैं नहीं हूं, अब तो तू ही है। और जो द्वार सदा बंद थे वे खुल गए। प्रेम के द्वार तभी खुलते हैं जब अहंकार का आभास गिर जाता है। सत्य पर पर्दा नहीं है। पर्दा हमारी दृष्टि पर है और गहरे देखने पर प्रेम के द्वार बंद नहीं थे, अहंकार से आंखें बंद थीं। अहंकार गया तो द्वार सदा से खुले ही हैं।

प्रेम की साधना स्वयं को मिटाने की साधना है। और आश्चर्यों का आश्चर्य तो यही है कि जो स्वयं को मिटाता है वही स्वयं को पाने में समर्थ होता है!

धर्म के प्रति आधुनिक मन में बड़ी उपेक्षा है। और यह अकारण भी नहीं है। धर्म का जो रूप आंखों के सामने आता है, वह न तो रुचिकर ही प्रतीत होता है और न ही धार्मिक। धार्मिक से अर्थ है सत्य, शिव और सुंदर के अनुकूल। तथाकथित धर्म वह वृत्ति ही नहीं बनाता जिससे सत्य, शिव और सुंदर की अनुभूति होती हो। वह असत्य, अशिव और असुंदर की भावनाओं को बल और समर्थन भी देता है। हिंसा, वैमनस्य और विद्वेष उसकी छाया में पलते हैं। मनुष्य का इतिहास तथाकथित धर्म के नाम पर इतना रक्तरंजित हुआ है कि जिनमें थोड़ा विवेक और बुद्धि है,

बहुत स्वाभाविक है कि न केवल उनके हृदय धर्म के प्रति उदासीन हो जाएं, बल्कि ऐसे विकृत रूपों के प्रति विद्रोह का भी अनुभव करें। यह बात विरोधाभासी मालूम होगी, किंतु बहुत सत्य है कि जिनके चित्त वस्तुतः धार्मिक हैं वे ही लोग तथाकथित धर्मों के प्रति विद्रोह अनुभव कर रहे हैं। धर्म भी एक जीवंत प्रवाह है। और निरंतर रूढ़ियों, परंपराओं और अंधविश्वासों को तोड़कर उसे मार्ग अपनाना पड़ता है। सरिताएं जैसे सागर की ओर बहती है और उन्हें अपने मार्ग में बहुत-सी चट्टानों तोड़नी पड़ती हैं, और बहुत सी बाधाएं दूरी करनी होती है, ठीक वैसे ही धर्म का भी विकास होता है। धर्म के प्रत्येक सत्य के आसपास शीघ्र ही संप्रदाय अपने घेरे बांध कर खड़े हो जाते हैं। फिर इन घेरों से न्यस्त स्वार्थ होते हैं। स्वाभाविक है कि जहां स्वार्थ है वहां संघर्ष भी आ जाए। ऐसे संप्रदाय आपस में लड़ने लगते हैं। यह लड़ाई वैसी ही है जैसी प्रतिस्पर्धी दुकानों में ग्राहकों के लिए होती है। संगठन संख्या पर जीते हैं। इसलिए येन-केन प्रकारेण अनुयायियों को बढ़ाने की दौड़ चलती रहती है। धर्म के नाम पर भी इस प्रकार शोषण संभव हो जाता है। मार्क्स ने संभवतः इसी कारण धर्म को जनता के लिए अफीम का नशा कहा है।

धर्म, संप्रदाय सत्य के खोजी भी नहीं रह जाते। वे तो अपनी-अपनी धारणाओं को हर स्थिति में सत्य सिद्ध करने में संलग्न रहते हैं और इसलिए वे ज्ञान के प्रत्येक नए चरण के शत्रु हो जाते हैं। विज्ञान के साथ धर्म का संघर्ष इसी बात की सूचना है। ज्ञान तो नित्य आगे बढ़ता रहता है और तथाकथित धार्मिक पुरानी और मृत धारणाओं से ही चिपके रहते हैं, इसलिए वे प्रगति के विरोध में प्रतिक्रियावादी सिद्ध होते हैं। ऐसे धर्म-संप्रदाय धर्म के ही मार्ग में बाधा बन जाते हैं। धर्म को जितना अहित सांप्रदायिक दृष्टि ने पहुंचाया है, उतना किसी और बात ने नहीं। संप्रदाय जितने बढ़ते गए धर्म का उतना ही ह्रस होता गया। संप्रदाय तो जड़ आवरण है। धर्म की विकासशील आत्मा के वे कारागृह बन जाते हैं।

धर्म एक है, लेकिन संप्रदाय अनेक हैं और इसी कारण अद्वय सत्य की उपलब्धि में उनकी अनेकता सहयोगी नहीं

हो पाती। जैसे विज्ञान एक है और उसके कोई संप्रदाय नहीं वैसे ही वस्तुतः धर्म भी एक है और उसके सत्य भी सार्वभौम हैं। धर्म की संप्रदायों से मुक्ति अत्यंत आवश्यक हो गई है। मनुष्य के विकास में ऐसी घड़ी आ गई है कि धर्म संप्रदाय से मुक्त होकर ही उसे प्रीतिकर, उपादेय और वांछनीय ज्ञात हो सकेगा। संप्रदाय से मुक्त होते ही धर्म का न्यस्त स्वार्थ का रूप नष्ट हो जाता है। वह दुकानदारी नहीं है और न किन्हीं अंधविश्वासों का प्रचार है। वह न संगठन है और न शोषण। फिर तो वह व्यक्ति, सत्ता और सर्व सत्ता के बीच प्रेम और प्रार्थना का अत्यंत निजी संबंध है। धर्म अपने शुद्ध रूप में वैयक्तिक है। वह तो स्वयं का समर्पण है। संगठन से नहीं साधना से उसका संबंध है। क्या प्रेम के कोई संप्रदाय हैं? और जब प्रेम के नहीं हैं तब प्रार्थना के कैसे हो सकते हैं? प्रार्थना तो प्रेम का ही शुद्धतम रूप है। सत्य की कोई भी धारणा चित्त को बंदी बना लेती है। सत्य को जानने के लिए चित्त की परिपूर्ण स्वतंत्रता अपेक्षित है। चित्त जब समस्त सिद्धांतों, शास्त्रों से स्वयं को मुक्त कर लेता है, तभी उस निर्दोष और निर्विकार दशा में सत्य को जानने में समर्थ हो पाता है। व्यक्ति जब शून्य होता है तभी उसे पूर्ण का अधिकार मिलता है।

मनुष्य के सारे जीवन सूत्र उलझ गए हैं। उसके संबंध में कोई भी सत्य सुनिश्चित नहीं प्रतीत होता। न जीवन के अथ का पता है, न अंत का। पहले के समय में जो भी धारणाएं स्पष्ट प्रतीत होती थी वे सब अस्पष्ट हो गई हैं। धारणाओं के पुराने भवन तो गिर गए पर नए निर्मित नहीं हुए। पुराने सब मूल्य मर गए हैं या मर रहे हैं और कोई नए मूल्य अंकुरित नहीं हो पाते। एक ही नया मूल्य अंकुरित हुआ है कि यह भौतिक जीवन ही सब कुछ है। परंतु इस नए मूल्य संघर्ष, द्वंद्व और युद्ध, अशांति को जन्म दिया है। इस भांति जीवन दिशाशून्य होकर ठिठका सा खड़का है। यह किंकर्तव्यविमूढ़ता हमारी प्रत्येक चिंतना और क्रिया पर अंकित है। स्वभावतः ऐसी दशा में हमारे चित्त यदि तीव्र संताप से भर गए हों तो कोई आश्चर्य नहीं। गंतव्य के बोध के बिना गति एक बोझ ही हो सकती है। जीवन के अर्थ को जाने बिना जीना एक भार हो ही सकता है। अर्थ और

अभिप्रायशून्य उपक्रम अंततः, अर्थ और अभिप्राय को कैसे जन्म दे सकते हैं। जिस यात्रा का प्रथम चरण ही अर्थहीन हो, उसका अंतिम चरण अर्थ नहीं बन सकता। फिर जो पूरी की पूरी यात्रा ही अर्थहीन हो तब तो अंत में अनर्थ ही हाथ आएगा। यह कोई कोरे सिद्धांत की बात नहीं है। यह तो सीधा अनुभव ही है। चारों और हजारों चेहरों पर छाई हुई निराशा, लाखों आंखों में घिरा हुआ अंधकार, करोड़ों हृदयों पर ऊब और संताप का भार इसका स्पष्ट प्रमाण है। खोज करने पर भी शांत, संतुष्ट और आनंदित व्यक्ति का मिलना दुर्लभ होता जा रहा है। अभी तो ऋतुराज आता है और सृष्टि सुमनों तथा उनकी सुगंधि से भर जाती है। पावस में मेघमालाएं उठतीं, दामिली दमकतीं, वर्षा होती, इंद्रधनुष निकलता है और हरियाली छा जाती है। ऊषा और संध्या की सुनहरी आभा से पूर्व और पश्चिम नित्य ही आलोकित होते हैं। उदय होते हुए भगवान भास्कर की आभा और नित्य प्रति बढ़ती हुई चंद्रमा की कलाएं अपना सौंदर्य दिखाती है। विविध समीर बहता है और पंछी अपना मधुर राग अलापते हैं। किंतु वे मनुष्य कहां हैं जिनके हृदय संगीत से भरे हों और जिनकी आंखों से सौंदर्य झरे? निश्चय ही मनुष्य के साथ कुछ भूल हो गई है। निश्चय ही उसके भीतर कुछ टूट और खो गया है। निश्चय ही मनुष्य जो होने को पैदा हुआ है, वही होना वह भूल गया है।

यह भूल इसलिए हुई है कि मनुष्य जो उसके बाहर है उसे समझाने और जीतने में अतिशय संलग्न हो गया है। उसकी बाहर की अति संलग्नता ने भीतर की भूमि से क्रमशः उसे अपरिचित कर दिया है। धीरे-धीरे यह स्मरण ही न रहा कि हमारे भीतर भी जानने और जीतने को एक जगत है। बाहर के जगत में मिली विजय क्रमशः उसे और बाहर लेती गई। नए-नए अविजित क्षितिज उसे आकर्षित करते रहे और उनके प्रलोभनों में वह स्वयं से ही दूर बढ़ता गया। जगत का कोई अंत नहीं है। बारह अनंत विस्तार है, यह संभव नहीं कि कभी भी उस पूरे विस्तार को हम अपनी मुट्ठी में ले सकेंगे। जितना हम जानते हैं जगत उतना ही बड़ा होता जाता है। जितना हम उसे जीतते हैं उतना ही वह अविजित क्षेत्र बड़ा होता जाता है। इस दौड़ में स्वर्णमृग तो

हाथ नहीं आता। हां, स्वयं की सीता से जरूर दूर हुए जाते हैं। राम ने जैसा अंत में पाया कि स्वर्णमृग तो मिला नहीं लेकिन सीता अवश्य खो गई। ऐसी दशा पूरी मनुष्यता की है। बाहर के सर्व को खोजने और जीतने हम निकले और अंत में यह पा रहे हैं कि भीतर के स्व को ही हार गए और खो बैठे। मनुष्य की चेतना को वापिस उसके स्व में प्रतिष्ठित करना अपरिहार्य हो गया है। तभी हम स्वयं को जानने में समर्थ हो सकेंगे। और उस ज्ञान के प्रकाश से ही जीवन की उलझी गुत्थी सुलझ पाएगी। यह अज्ञान चरम अज्ञान है कि जो स्वयं को ही न जानता हो वह शेष सबको जानने में संलग्न हो। प्रकृति नहीं, पुरुष सर्वप्रथम जानने योग्य है। उस ज्ञान के आधार पर शेष सब ज्ञान सार्थक हो सकता है। उस मूल ज्ञान के अभाव में और किसी की भांति के ज्ञान का कोई भी मूल्य नहीं। मनुष्य प्रथम है, शेष सब पीछे। मनुष्य को सबसे अंत में रखकर ही भूल हो गई है। आज मनुष्य के विकास में एक अदभुत विरोधाभास दिखाई देता है। जहां एक और मौलिक तल पर समृद्धि और प्रगति अनुभव होती है वहीं इस भौतिक समृद्धि और प्रगति के साथ-साथ ही आत्मिक तल पर हृस और पतन भी दिखाई पड़ता है। अतः वे लोग भी ठीक है जो कहते हैं कि मनुष्य निरंतर उन्नत हो रहा है और वे लोग भी ठीक हैं जिनकी मान्यता है कि मनुष्य का प्रतिदिन पतन होता जा रहा है। हम दोनों को ठीक इसलिए कहते हैं कि भौतिकवादी अपनी दृष्टि से आधुनिक मनुष्य को देखते हैं और अध्यात्मवादी अपनी दृष्टि से। कठिनाई यह है कि दोनों यह अनुभव नहीं करते कि उनकी दृष्टि एकांगी दृष्टि है। भौतिक विचारधारावाले तो, आत्मिकतल भी कोई तल होता है, इसे जानते तक नहीं है और आध्यात्मिक विचारधारावाले इस सारी समृद्धि और प्रगति को निरर्थक मानते हैं। विचारणीय यह हो गया है कि विरोध दिशाओं में खिंच रही मानव की यह स्थिति कहीं उसका अंत ही न कर दे। यह घटना असंभव घटना नहीं है। यह इसलिए कि यदि हम भौतिकतल की उन्नति में ही लगे रहे और हमारा अंतस जैसा अभी है वैसा ही रहा तो यह सारी भौतिक समृद्धि नष्ट हो सकती है। भीतर रुग्णता हो और बाहर स्वस्थ दिखाई पड़े

तो किसी भी क्षण दुर्घटना घटित हो सकती है। जिस हृदयरोग का आजकल बाहुल्य हो गया है उसमें बाहिरी स्वस्थता ही दीख पड़ती है, परंतु बाहर की स्वास्थ्य अच्छा दिखते हुए भी यह ऐसा रोग है जो क्षण भर में सारी स्वस्थता समाप्त कर व्यक्ति का नाश कर देती है। बाहर संपदा दिखाई पड़े और भीतर पास में कुछ न हो तो दिवालियापन कभी भी प्रकट हो सकता है। बाहर विकास हो और भीतर ह्रस तो भविष्य के संबंध में आशावान नहीं हुआ जा सकता। बाह्य और अंतस का तनाव से बड़ा और कोई तनाव संभव नहीं है। इससे बड़ी न तो कोई अशांति हो सकती है और न कोई आत्मवंचना। हम कब तक अपने को धोखा देते जाएंगे। हर धोखे का भी टूट जाने का समय आता है और भौतिक समृद्धि के रहते हुए अंतस की इस शून्यता के कारण जिस एक धोखे में हम रह रहे हैं उस धोखे के टूटने का समय निकट आ रहा है¬अंतस की यह स्थिति ही भौतिक समृद्धि के बढ़ते रहने पर चारों और अनैतिकता और अमानवीयता बढ़ा रही है। जिसे सच्ची धार्मिकता कहते हैं वह नष्ट हो गई है। इस स्थिति में प्रतिक्षण पैदा हो रहे छोटे-बड़े दुष्परिणाम क्या हमें सजग कर देने को यथेष्ट नहीं है? क्या संपत्ति और समृद्धि के बीच भी तीव्र संताप की मनःस्थिति और चिंता की ज्वालाओं का ताप हमें जगा देने को पर्याप्त नहीं है? व्यक्ति के तल पर ही नहीं, समाज और राष्टरें के तल पर भी फैला हुआ विद्वेष, घृणा और हिंसा और आए दिन विस्फोट होते हुए घातक युद्ध भी क्या हमारी निद्रा को नहीं तोड़ सकेंगे? विगत आधी सदी में दो महायुद्धों में कोई दस करोड़ लोगों की हत्या हुई। जहां-जहां युद्ध भी विभीषिका फैली थी वहां-वहां युद्ध के पश्चात जीवित जनसमुदाय ने अगणित कष्ट पाए। इतनी बड़ी हिंसा और दुर्दशा का जन्म निश्चित ही हमसे ही हुआ है। हम ही इसके लिए उत्तरदायी हैं। हम जैसे हैं उसमें ही उसके बीज मौजूद हैं। ये युद्ध केवल राजनैतिक या आर्थिक स्थिति के ही परिणाम नहीं थे। मूलतः और अंततः तो सब कुछ मानव के मन से संबंधित होता है। ऊपर से इस प्रकार की घटनाएं चाहे राजनैतिक दिखें अथवा आर्थिक किंतु गहरे में तो सभी कुछ

मानसिक रहता है। समाज में ऐसी कोई स्थिति नहीं है जिसके मूल कारण व्यक्ति के मन में न खोजे जा सकें, क्योंकि समाज व्यक्तियों के जोड़ के अतिरिक्त और क्या है? जो चिनगारियां व्यक्तियों के मन में अत्यंत छोटे रूप में दिखाई पड़ती है वे ही तो समूह की सामूहिकता में बिकराल अग्निकांड बन जाती है।

व्यक्ति की आत्मा में ही यथार्थ में समूह का सारा स्वास्थ्य या रुग्णता छिपी रहती। आत्मविपन्न व्यक्ति स्वस्थ समाज के निर्माता नहीं हो सकते। दुखी, संतापग्रस्त ईकाइयां किसी भी भांति आनंदपूर्ण और शांतिचित्त समाज की घटक कैसे हो सकती हैं? ऐसा कोई भी चमत्कार संभव नहीं है जो तत्त्व में किसी भी अंश-रूप से इकाई में उपस्थित न हो और वह पूर्ण जोड़ में आ जाए। जो समूह में और जोड़ में दिखाई पड़ता हो, मानना होगा कि वह अपने अंशों में अति-सूक्ष्म रूप से अवश्य ही मौजूद रहता है। इसलिए ऊपर दूसरे शब्दों में केवल उथला देखकर मानवीय जीवन की किसी भी समस्या का समाधान नहीं हो सकता। उथले में समूह ही पकड़ में आता है, गहरे जाने पर व्यक्ति उपलब्ध होता है। जहां समस्या का जन्म है, वहीं समाधान भी खोजना होगा तभी वह समाधान और वास्तविक समाधान होगा। अन्यथा जिसे हम समाधान मानते हैं वह और अन्य नवीन समस्याएं खड़ी कर देता है। जैसे युद्ध को मिटाने के लिए या शांति पाने के लिए उथली दृष्टि युद्ध का ही समाधान प्रस्तुत करती है। आज तक जितने युद्ध लड़े गए वे अन्याय का निराकरण करने और न्याय की स्थापना करने के उद्देश्य से ही लड़े गए। यह सदा कहा गया। परंतु जिसे अन्याय कहा जाता था, न युद्ध से उस अन्याय का निराकरण हुआ और जिसे न्याय कहा जाता था, न उस न्याय की ही स्थापना। इस प्रकार भ्रांत तर्क के आधार पर हजारों वर्षों से मनुष्य लड़ता रहा है लेकिन कोई भी युद्ध न अन्याय का निराकरण कर सका और न न्यास की स्थापना। फिर शांति तो वह स्थापित कर ही कैसे सकता था? जो युद्ध शांति का विरोधी है, उससे शांति की स्थापना! अनेक युद्धों को तो धर्मयुद्ध तक कहा गया है। कोई युद्ध भी धर्म युद्ध हो सकता है? युद्ध शांति का जनक

न होकर नए युद्धों का ही जन्मदाता होता है और नया युद्ध
ये भीषणतर होता जाता है। पश्चिम में जहां सर्वप्रथम
सयता का विकास हुआ उस यूनान के ऐथेन्स और स्पार्टा
के युद्धों में वीरगति प्राप्त करनेवालों की संख्या कितनी और
उस युद्ध के आयुघ कैसे थे? पूर्व में भारतीय महाभारत युद्ध
में भी कितना नरसंहार हुआ था और उसमें भी किस प्रकार
के अस्त्र-शस्त्रों का उपयोग किया गया था? इस शताब्दी
के गत दो विश्वयुद्धों के नरसंहार और आयुधों का इन
प्राचीन युद्धों से मिलान किया जाए। और अब तो अणुबम
और उदजन बम तक हम पहुंच गए हैं। यदि तीसरा
विश्वव्यापी युद्ध हुआ और युद्ध में इन आयुधों का उपयोग
किया गया तो विश्व की मानवता की क्या स्थिति रहेगी इस
संबंध में बड़े से बड़ा भविष्यवक्ता भी कोई ठीक
भविष्यवाणी करने में असमर्थ है। ऐसी ही जीवन की अन्य
समस्याओं के भी हमारे समाधान है। अपराध को मिटाना है
तो दंड और फांसी है, किंतु हजारों वर्षों तक दंड देने पर भी
अपराध मिटा नहीं, वह बढ़ता गया और अभी भी बढ़ रहा
है। इतने पर भी हमारा आंखें नहीं खुलतीं और हम सतह पर
ही इलाज किए चले जाते हैं जबकि बीमारी गहरी है और
भीतर है। शोषण मिटाने के लिए हिंसात्मक क्रांतियां हुई।
जबकि शोषण भी हिंसा ही है तो वह हिंसा से कैसे मिटाया
जा सकेगा? हिंसा से जो क्रांतियां हुई उनसे क्या कहीं भी
शोषण मिट पाता है? इस प्रकार की क्रांतियों का परिणाम
यह होता है कि शोषक तो बदल जाते हैं किंतु शोषण बना
रहता है।
व्यक्ति के अंतस्तल के परिवर्तन के बिना कोई परिवर्तन
वास्तविक परिवर्तन नहीं हो सकता। व्यक्ति के हृदय में
समृद्धि आनी चाहिए। वहां की दरिद्रता, दीनता और रिक्तता
मिटनी चाहिए। वहां दुःख, चिंता और संताप का अंत होना
चाहिए। जब तक उस गहराई में आलोक, प्रेम और आनंद
का आविर्भाव न होगा तब तक जीवन कोशांत और सुखी
बनाने के सब उपाय व्यर्थ होगा। क्या केवल भौतिकतल
की समृद्धि यह कर सकती है? केवल बाह्य समृद्धि और
बाह्य विकास उस अवस्था को देने में असमर्थ है। मनुष्य
की आंतरिकता भी विकसित होनी चाहिए। चीजों को बढ़ता

जाना ही पर्याप्त नहीं है, हृदय भी बढ़ना चाहिए। वस्तुओं की पारिमाणिकता ही नहीं, मनुष्य की गुणात्मिकता भी बढ़नी चाहिए। मनुष्यता की वृद्धि जितनी अधिक होगी उतनी ही अधिक समस्याएं कम हो जाएंगी क्योंकि हमारी अधिकांश समस्याएं हमारे भीतर जो पाशविकता है उससे ही उत्पन्न होती है। आज हम इस पाशविकता की अभिव्यक्ति के लिए ही अधिकतर नए-नए उपाय खोजते हैं फिर चाहे वे राष्टरें के नाम पर हों, चाहे सिद्धांतों के नाम पर, चाहे वादों के नाम पर। अच्छे-अच्छे शब्दों की आड़ में हम अपने बुरे से बुरे रूप को प्रकट करते रहते हैं। शब्द तो बहाने हैं। उन्हें कोई समस्याएं न समझे। जो उन्हें ही समस्याएं समझ लेता है वह समाधान तक कभी नहीं पहुंच सकेगा। समस्या शब्दों की नहीं, चित्त की है। प्रश्न युद्ध का नहीं, युद्ध करनेवाले मन का है। वह मन जो संघर्ष, विप्लव, युद्ध करना चाहता है वह एक बहाना न मिलने पर दूसरा बहाना खोज लेगा। इसलिए हम बहाने को बदलते जाते हैं परंतु अशांति बनी रहती है। जो चित्त इसाईयत और इस्लाम के नाम पर या हिंदू और बौद्ध के नाम पर लड़ता था, वही चित्त साम्यवाद और जनतंत्र के नाम पर लड़ रहा है। लेकिन लड़ाई वहीं की वहीं है। इस स्थिति को बदलना हो तो चित्त को बदलना आवश्यक है।

सृष्टि में कोई भी वस्तु पूर्णतया पूर्ण और निर्दोष तो नहीं हो सकती परंतु मानव हर वस्तु का निर्दोष बनाने का यत्न अवश्य करता है। चूंकि वह स्वयं पूर्ण नहीं है इसलिए उसके समस्त कार्य अपूर्ण ही रहते हैं। हजारों वर्षों के मानव इतिहास में कभी भी शिक्षा की कोई पद्धति तो अत्यंत शोचनीय और चिंतनीय हो गई है। सारे संसार में कोई भी उससे संतुष्ट नहीं है। इसका प्रधान कारण यह है कि वर्तमान शिक्षापद्धति के माध्यम से मनुष्य का जानकारियां (इनफारमेशन) तो मिल जाती है लेकिन सच्चे ज्ञान की उपलब्धि उसे नहीं होती। यह ज्ञान उपलब्ध न होने से स्वयं मानव का निर्माण यह शिक्षा नहीं कर पाती। तथ्यों की जानकारी से मनुष्य का मस्तिष्क तो भर जाता है, परंतु उसकी अंतरात्मा खाली की खाली बनी रहती है। न तो उसके अंतःकरण का जागरण होता है, न उसके हृदय में

शुभ भावना का अवतरण। इसे यों भी कह सकते हैं कि यह शिक्षा उस आहार की भांति है जिससे भूख तो मिट जाती है, तृप्ति नहीं होती और न ही नया रक्त अथवा अन्य धातुओं की शरीर में अभिवृद्धि ही होती है। यही कारण है कि वर्तमान शिक्षा हमारे चरित्र को स्पर्श भी नहीं कर पाती और इससे मनुष्य के व्यक्तित्व को गढ़ने का कोई उपाय प्रतिपादित नहीं होता। यह कितना आश्चर्यजनक और अभाग्यपूर्ण है कि शिक्षा-प्रशिक्षण द्वारा पशु को मानव बनाने का उपक्रम तो किया जाता है पर मानव को मानव बनाने का नहीं। या इसे यों कहें कि पशु की पशुता दूर करने के प्रयत्न तो किए जा रहे हैं, जबकि मनुष्य में अंतर्निहित पाशविकता को उलटा बढ़ाया जा रहा है। यही नहीं, उसे मानव से कुछ और बनाने के सभी प्रयत्न आधुनिक शिक्षा में किए जा रहे हैं।

मानव को मानव बनाए रखना है अथवा कुछ और बना देना है, यही आधुनिक शिक्षा की समस्या है, जिस पर ही बुद्धिवादी, विवेकशील व्यक्ति और संसार का हर वर्ग चिंतित है।

मनुष्य को छोड़कर अन्य किसी जीवन को शिक्षित नहीं किया जा सकता, क्योंकि निसर्ग ने जो ज्ञान शक्ति मनुष्य को दी है वह अन्य किसी प्राणी को नहीं। अन्य जीवों को केवल प्रशिक्षण (टेनिंग) दिया जा सकता है जैसे सर्कस के सिंह, हाथी, घोड़ा, बंदर, बकरे और तोता-मैना आदि को। शिक्षण और प्रशिक्षण के इस बुनियादी भेद को समझना बहुत आवश्यक है।

शिक्षा का सूत्र और उसके स्रोत, अंतस में है। वह एक संस्कार है जो बीज रूप से अंकुरित हो वृक्ष बनता है और उसमें पुष्प एवम फल फलते हैं, जबकि प्रशिक्षण मात्र अयास है। वह है उस पौधे की भांति, जो पुष्ट और फलों से रहित रिक्त स्थान की पूर्ति के लिए सजावट के कसी स्थल पर क्षणिक महत्व के लिए रोपा जाता है, जिसे आर्टिफिसियल कह सकते हैं। याने शिक्षा एक प्राकृतिक संस्कार है और प्रशिक्षा एक कृत्रिम वस्तु-मात्र। पहले का संबंध अंतस से है, दूसरे का बाहर से, पहला प्राकृतिक है, दूसरा कृत्रिम! एक विकासशील प्राण-तत्व है तो दूसरा

निर्जीव पदार्थवत। इस प्रकार प्रशिक्षण ऊपर से जबर्दस्ती थोपा हुआ ढांचा है। शिक्षा ऊपर से नहीं थोपी जाती वरन अंतस को जगाकर दी जाती है। पानी के हौज में जिस प्रकार पानी ऊपर से भरा जाता है उसी प्रकार प्रशिक्षण शिक्षा रूपी कुएं में भरे हुए पानी की भांति है जो भीतरी छेदों से भरता है। अंग्रेजी शब्द "एजुकेशन" का अर्थ बड़ा महत्वपूर्ण है। उसका अर्थ है भीतर से बाहर निकालना, उसका अर्थ बाहर से भीतर डालना नहीं है। पर हम जो कुछ कर रहे हैं वह बाहर से भीतर डालना है। इसे शिक्षा कैसे कहा जा सकता हैं? यह मात्र प्रशिक्षण है और यही कारण है कि जिसे हम शिक्षित होना कहते हैं, और जिसे हमारे विश्वविद्यालय सम्मानित करते हैं, वह जीवन की व्यापक और बृहद्ध परीक्षा में असफल हो जाता है। ऐसा शिक्षित जन केवल रटा हुआ तोता होता है, उसमें स्वयं विचार की न तो कोई ऊर्जा होती है और न अपने जीवन को निर्देशित करने का कोई विवेक। वह पानी की लहरों पर बहते हुए लकड़ी के उस टुकड़े की भांति होता है जिसे लहरें जहां ले जाती हैं चला जाता हैं।

प्रशिक्षण का शिक्षण के रूप में इस भांति प्रचलित होना तकनीकी शिक्षा के अति प्रभाव के कारण हुआ है क्योंकि तकनीकी का प्रशिक्षण ही हो सकता है, शिक्षण नहीं। सारा संसार चूंकि भौतिक समृद्धि के लिए लालायित है, और हमारा देश तो गरीबी के कारण और घी अधिक, इसलिए तकनीकी ज्ञान को ही प्रमुखता मिली है। मैं तकनीकी ज्ञान की और उसके द्वारा होनेवाली भौतिक समृद्धि के विरुद्ध नहीं हूं। संसार के लिए और हमारे लिए वह भी आवश्यक है। किंतु इससे जो हमारा अनिष्ट हो रहा है, उसकी दिनों-दिन बढ़ती हुई संभावना से हमारे बुनियादी जीवन का जो आधार खोखला हो रहा है, उससे अब हम अधिक समय तक अपने आंखें मूंद कर नहीं रह सकते। अपनी अयोग्यता को छिपाकर केवल अयास के बल पर हम आखिर कहां तक आगे बढ़ सकेंगे? सच्ची शिक्षा के अभाव में यह प्रशिक्षण हमारे जीवन को दरिद्र और एकांगी बना रहा है। इसी के साथ इसके कुछ भयावह नतीजे भी निकल रहे हैं। तकनीकी ज्ञान भौतिक जगत-नियंत्रण के

लिए आवश्यक है। परंतु जिसे मैं सच्ची शिक्षा कहता हूं, उसके द्वारा शिक्षित न होने के कारण मनुष्य अपने पर नियंत्रण नहीं कर पा रहा है। स्वयं पर इस अनियंत्रण के कारण उसका पदार्थ-ज्ञान एवं भौतिक वस्तुओं को आधिपत्य वैसा ही है जैसा अबोध बच्चे के हाथ में तलवार देना। पिछले दो महायुद्ध इसके प्रमाण हैं और हम आज भी उसी दिशा में बढ़ रहे हैं। हमें इन महायुद्धों से चेतावनी नहीं मिली। यदि हम सचेत नहीं होते हैं तो अनियंत्रित मनुष्य के हाथ में प्रकृति की नियंत्रित शक्तियां आत्मघाती सिद्ध होंगी। इसकी चरम परिणति समस्त मानवता के अंत करने में हो सकती है। अतः भौतिक वस्तुओं पर नियंत्रण के पूर्व मनुष्य का उससे कहीं अधिक स्वयं पर नियंत्रण होना आवश्यक है। क्योंकि शक्ति केवल संयमी के हाथों में ही सुरक्षित रहती है। असंयमी, अविवेकी के शक्तिशाली होने से भस्मासुर की पुनरावृत्ति अवश्यंभावी है।

इस जगत में मनुष्य के लिए मनुष्य से अधिक महत्वपूर्ण और कुछ भी नहीं है। वह प्रथम है और जो शिक्षा मनुष्य के सृजन की शिक्षा न होकर उसके संहार का कारण बनती है उसे शिक्षा कैसे कहा जा सकता है? शिक्षा का अर्थ है सदिच्छा, सदभाव का प्रसार करना। एक ऐसे ज्ञान का विस्तार शिक्षा-तत्व में निहित है जो व्यष्टि के माध्यम से समष्टि के कल्याण का केंद्र बने। तकनीकी ज्ञान शिक्षा का प्रधान अंग कभी नहीं होना चाहिए, वह गौण रहना चाहिए। मानवीय मूल्यों की स्थापना ही शिक्षा का केंद्रीय तत्व है। तकनीकी ज्ञान से उपार्जित वस्तुएं जीवन यापन का साधन हो सकती हैं, साध्य नहीं, साध्य तो मनुष्य स्वयं है। इस साध्य की प्राप्ति के लिए ही शिक्षा उसका एक शस्त्र है, एक साधन है। वर्तमान शिक्षा-पद्धति में हुआ यह है कि जो साध्य है वह साधन बन गया है और जो साधन है वह साध्य। इस प्रकार साधन को साध्य के ऊपर रखना घातक सिद्ध हुआ है। भौतिक शिक्षा में साधन साध्य बन जाते हैं और आध्यात्मिक शिक्षा में साधन साधन रहते हैं और साध्य साध्य। यदि आवश्यकता पड़े एवं कोई अन्य विकल्प शेष न रहे तो सच्ची शिक्षा साधनों का परित्याग कर सकती है, लेकिन साध्य का नहीं। उसकी दृष्टि में वे हर साधन

सम्यक है जो जीवन के चरम साध्य की उपलब्धि में
सहयोगी है। उसके विपरीत पड़ते ही वे व्यर्थ और त्याज्य
हो जाते हैं।

मानव की सम्यक शिक्षा मूलतः उसके विवेक और
उसकी भावनाओं की शिक्षा होगी। विवेक जाग्रत और
शक्तिशाली हो तथा भावनाएं संयमित और शुभ। विवेक
के जाग्रत होते ही वासनाएं अनिवार्यतः उसकी अनुगामी हो
जाती हैं। फिर श्रेय ही प्रेम हो जाता है। ऐसा जीवन ही
यज्ञपूर्ण है। शिक्षा का लक्ष्य ऐसा ही जीवन है।

चौथा प्रवचन

कृष्ण की अनासक्ति, बुद्ध की उपेक्षा, महावीर की वीतरागता, क्राइस्ट की तटस्थता

क्राइस्ट की तटस्थता और बुद्ध की उपेक्षा, महावीर की वीतरागता और कृष्ण की अनासक्ति, इनमें बहुत सी समानताएं हैं। लेकिन बुनियादी भेद भी है। समानता अंत पर है, उपलब्धि पर है; भेद मार्ग में है। अंतिम क्षण में ये चारों बातें एक ही जगह पहुंचा देती हैं। लेकिन चारों के रास्ते बड़े अलग-अलग हैं। जीसस जिसे तटस्थता कहते हैं, बुद्ध जिसे उपेक्षा कहते हैं, इनमें बड़ी गहरी समानता है। यह जगत कैसा है, इस जगत की धाराएं जैसी है, इस जगत के अंतर्द्वंद्व जैसे हैं, इस जगत में भेद और विरोध जैसे हैं--उनके प्रति को तटस्थता हो सकती है। लेकिन तटस्थता कभी भी प्रसन्नता नहीं हो सकती। तटस्थता बहुत गहरे में उदासी बन जाएगी। इसलिए जीसस उदास हैं और अगर वे किसी आनंद को पाते भी हैं, तो वह इस उदासी के रास्ते से ही उन्हें उपलब्ध होता है। लेकिन उसका पूरा रास्ता उदास हैं। वे जीवन के पथ पर गीत गाते हुए नहीं निकलते। तटस्थता उदासी बन ही जाएगी। और जीसस की तटस्थता बहुत उदासी बन गई है। अगर मैं न यह चुनूं, अगर कोई चुनाव न हो तो मेरे भीतर की बहनेवाली सारी धाराएं रुक जाएंगी। नदी न पूरब बहे, न पश्चिम बहे, न दक्षिण बहे, न उत्तर बहे, तटस्थ हो जाए तो वह उदास तालाब बन जाएगी। तालाब भी सागर तक पहुंच जाता है लेकिन नदी के रास्ते से नहीं, सूर्य की किरणों के रास्ते से पहुंचता है। लेकिन नदी, जो बीच का रास्ता नाचते हुए, गीत गाते हुए तय करती है वह भाग्य तालाब का नहीं है। तालाब सूखता है धूप में, गर्मी में उत्तप्त होता है, उड़ता है, भाप बनता है, बादल बनता है। सागर तक पहुंच जाता है। लेकिन नदी की मुदिता, उसकी प्रफुल्लता, उसकी "एक्सटैसी" तालाब को नहीं मिलती। वह उदासी स्वाभाविक है। सूरज की किरणों में तपना और भाप बनाना उदासी हो सकती है। तालाब नाचता हुआ बादलों पर नहीं चढ़ता पर नदी नाचती हुई सागर में उतर जाती है और तालाब सीधा भी सागर तक नहीं पहुंचता, बीच में भाप बनता है, फिर पहुंचता है। तो जीसस एक उदास बादल की तरह हैं जो आकाश में मंडराता है और सागर की यात्रा करता है। नाचती हुई नदी की तरह नहीं हैं।

बुद्ध और जीसस की जीवन-व्यवस्था में थोड़ी निकटता है, लेकिन एकदम निकटता नहीं है। क्योंकि बुद्ध और तरह के व्यक्ति हैं। जहां जीसस की तटस्थता जीसस को उदास कर जाती है वहां बुद्ध की उपेक्षा बुद्ध को सिर्फ शांत कर जाती है, उदास नहीं। इतना फर्क है। बुद्ध की उपेक्षा सिर्फ शांत कर जाती है। न वहां उदासी है जीसस-जैसी, न वहां कृष्ण जैसा नाचता हुआ गीत है, न महावीर जैसा झरता हुआ अप्रकट सुख और आनंद है। बुद्ध शांत हैं, तटस्थ नहीं हैं। तटस्थता तो उदासी ले ही आएगी। वे सिर्फ तटस्थ नहीं हैं, वे उपेक्षा को उपलब्ध हैं। पाया है कि यह भी व्यर्थ है, पाया है कि वह भी व्यर्थ है। इसलिए उत्तेजित होने का उन्हें कोई उपाय नहीं रहा है। उन्हें कोई भी आल्टरनेटिव, कोई भी विकल्प उत्तेजित नहीं कर पाता। सब विकल्प समान हो गए हैं। जीसस के लिए तटस्थता है। विकल्प समान हैं, पर जीसस अभी भी कहेंगे, यह ठीक है और वह गलत है। यह करो और वह मत करो। यद्यपि वे दोनों से तटस्थ हैं, लेकिन बहुत गहरे में उनका चुनाव जारी है। बुद्ध अचुनाव को (च्वाइसलेसनेस) उपलब्ध होते हैं। बुद्ध को अगर हम ठीक से समझें तो बुद्ध के लिए न कुछ सही है न कुछ गलत है। सिर्फ चुनाव ही गलत है, और अचुनाव सही है। च्वाइस गलत है, च्वाइसलेसनेस सही है। इसलिए जीसस अपनी तटस्थता में होली, इनडिफरेंस में भी, मंदिर में जाकर कोड़ा उठा लेते हैं और सूदखोरों को कोड़े से

पीप देते हैं, उनके तख्त उलट देते हैं। यहूदियों के मंदिर में, सिनागाग में पुरोहित ब्याज का काम भी करते थे। हर वर्ष लोग इकट्ठे होते थे मेले में, और तब वे उन्हें उधार देते थे और सूद लेते थे। सूद की दर इतनी बढ़ गई थी कि लोग अपना मूल तो कभी चुका ही नहीं पाते थे, ब्याज भी नहीं चुका पाते थे। और जिंदगी भर मेहनत करके बस इतना ही काम करते थे कि वे हर वर्ष आकर पुरोहितों को उनके ब्याज का पैसा चुका जाएं। पूरे मुल्क का धन सिनागाग में इकट्ठा होने लगा। तो जीसस कोड़ा उठा लेते हैं, तख्ते उलट देते हैं सूदखोरों के। जीसस इनडिफरेंट हैं, तटस्थ हैं, लेकिन चुनाव जारी है। वे कहते हैं कि इस जगत के प्रति एक तटस्थता चाहिए। लेकिन इस जगत में अगर गलत हो रहा है, तो जीसस चुनाव करते हैं। लेकिन बुद्ध को हम हाथ में कोड़ा उठाए हुए नहीं सोच सकते। उनका कोई चुनाव नहीं है, उनका काई चुनाव ही नहीं है। अचुनाव के कारण वे गहरी साइलेंस को, गहरी शांति को उपलब्ध हुए हैं। इसलिए बुद्ध को समझते वक्त शांति सबसे महत्वपूर्ण शब्द है। बुद्ध की प्रतिमा से जो भाव प्रकट होता है और झरता है चारों तरफ, वह शांति का है। कहना चाहिए शांति बुद्ध में मूर्तिमंत हुई है। कोई उत्तेजना नहीं है। तालाब की उत्तेजना भी नहीं है। तालाब भी कम से कम धूप की किरणों में भाप बनता है और आकाश की तरफ उड़ता है। बुद्ध इतने शांत हैं कि वे कहते हैं कि मैं सागर की तरफ जाने की उत्तेजना नहीं लेता। सागर को आना हो तो आ जाए। वे इतनी भी यात्रा करने की तैयारी में नहीं हैं। उतनी यात्रा भी तनाव है। इसलिए बुद्ध ने सागरवाची जितने भी प्रश्न हैं सबको इंकार कर दिया। कोई पूछे ईश्वर है, कोई पूछे ब्रह्म है, कोई पूछे मोक्ष है, कोई पूछे आत्मा का मरने के बाद क्या होता है? इस तरह के जितने भी प्रश्न हैं बुद्ध उनको हंस कर टाल देते हैं। वे कहते हैं यह पूछो ही मत। क्योंकि अगर कुछ भी है तो उस तक की यात्रा पैदा होती है और यात्रा अशांति बन जाती हैं। वे कहते हैं--मैं जहां हूं वहीं हूं। मुझे कोई यात्रा नहीं करनी है, मुझको कोई तनाव नहीं करना है। इसलिए अगर बुद्ध की उपेक्षा बहुत गहरे में देखें तो सिर्फ संसार की उपेक्षा नहीं है। जीसस की उपेक्षा सिर्फ संसार की उपेक्षा है, लेकिन परमात्मा का चुनाव जारी है। बुद्ध की उपेक्षा परमात्मा की भी उपेक्षा है। वे कहते हैं, परमात्मा को भी पाना है तो यह भी तो मन की डिजायर, तृष्णा और ईर्ष्या है। आखिर नदी क्यों सागर को पाना चाहे और नदी सागर को पाकर भी क्या पा लेगी? अगर सागर में ज्यादा जल है तो मात्रा का ही फर्क पड़ता है। नदी में भी जल है, और सागर के जल में और नदी के जल में फर्क क्या है! बुद्ध कहते हैं, हम जो हैं--हैं; और वहीं शांत है। इसलिए बुद्ध की उपेक्षा यात्राविहीन है। बुद्ध के चेहरे पर, बुद्ध की आंखों में यात्रा नहीं देखी जा सकती है। वे स्थिर हैं, ठहर गए हैं, वहीं हैं, जैसे कोई ताल बिल्कुल शांत हो। न नदी की तरह भागता हो, न आकाश की तरफ उड़ता हो, बिल्कुल शांत हो। एक लहर भी न उठती हो, एक रिपल भी पैदा न होती हो। ऐसे बुद्ध का होना है।

स्वभावतः बुद्ध की शांति निगेटिव होगी, नकारात्मक होगी। उसमें कृष्ण का प्रकट आनंद नहीं हो सकता, उसमें महावीर का अप्रकट आनंद भी नहीं हो सकता। लेकिन जो इतना शांत होगा कि जिसे सागर तक पहुंचने की इच्छा भी नहीं है, क्या वह अंततः आनंद को उपलब्ध नहीं हो जाएगा? हो जाएगा। लेकिन वह बुद्ध की भीतरी दशा होगी। उनके अंतर तक में वह आनंद का दीया जलेगा, लेकिन बाहर उनकी सारी की सारी आभा, उनका प्रभामंडल है, वह शांति का होगा। दीए की गहरी ज्योति जहां होगी वहां तो आनंद होगा, लेकिन उसका प्रभामंडल सिर्फ शांति का होगा। बुद्ध से हिलते-डुलते सोचना भी कठिन मालूम पड़ता है। बुद्ध की कोई चिंतना करे, सोचे तो ऐसा भी नहीं लगता कि यह आदमी उठकर चला भी होगा। उनकी प्रतिमा देखें तो ऐसी लगती है जैसे यह आदमी सदा बैठा ही रहा हो। यह उठा भी होगा, हिला भी होगा, डुला भी होगा, इसने पैर भी उठाया होगा, इने ओठ ही खोला होगा, यह बोला भी होगा, ऐसा भी मालूम नहीं पड़ता। बुद्ध की प्रतिमा "जस्ट

स्टिलनेस" की प्रतिमा है जहां सब चीजें ठहर गई हैं, जहां कोई मूवमेंट नहीं है, किसी तरह की कोई गति नहीं है। तो बुद्ध की आभा जो है वह शांति की है। फिर बुद्ध की उपेक्षा समस्त तनावों की उपेक्षा है। चाहे वे तनाव मोक्ष के ही क्यों न हों। कोई आदमी मोक्ष ही क्यों न पाना चाहे, बुद्ध कहेंगे, कि पागल हो! कहीं मोक्ष है? कोई कहे आत्मा को पाना है, तो बुद्ध कहेंगे, कि पागल हो! कहीं आत्मा है? असल में जब तक पाना है तब तक बुद्ध कहेंगे, तुम पा न सकोगे। तुम उस जगह खड़े हो जाओ जहां पाना ही नहीं है। तब तुम पा लोगे। लेकिन यह बात वे कभी साफ कहते नहीं है। क्योंकि अगर वे इतना भी कहें कि तब तुम पा लोगे, तो हत तत्काल पाने को दौड़ पड़ेंगे। तो बुद्ध सिर्फ निषेध करते जाते हैं। वे कहते हैं न परमात्मा है, न आत्मा है, न मोक्ष है, कोई भी नहीं है। है ही नहीं कुछ। क्योंकि जब तक कुछ है तक तक तुम पाना चाहोगे। और जब तक तुम पाना चाहोगे तब तक तुम न पा सकोगे। क्योंकि जो भी पाना है वह ठहर के, रुक के, मौन में, थिरता में, शून्य में पाना है। और तुम्हारी चाह, तुम्हारी तृष्णा तुम्हें दौड़ता रहेगी। तृष्णा मूल है बुद्ध के लिए, और उपेक्षा सूत्र है तृष्णा से मुक्ति का। चुनो ही मत, पूछो ही मत कि कहीं जाना है। मंजिल बनाओ ही मत, मंजिल नहीं है कोई।

जीसस के लिए मंजिल है। इसलिए जगत के प्रति वे एक होली इनडिफरेंस, पवित्र तटस्थता की बात करते हैं। लेकिन परमात्मा के प्रति उनकी इनडिफरेंस नहीं हो सकती। अगर वैसा कोई इनडिफरेंस है तो वह अनहोली इनडिफरेंस होगी। वह पवित्र तटस्थता न होगी। उनकी पवित्र तटस्थता संसार के प्रति है। अगर हम जीसस से पूछें कि बुद्ध तो कहते हैं, कोई परमात्मा नहीं है। कैसा परमात्मा? कोई आत्मा नहीं। है कैसी आत्मा? न कुछ पाने को है, न कोई पानेवाला है। इसलिए बुद्ध जो बात करते हैं वह बहुत अदभुत है। अगर उनसे पूछो कि कोई भी नहीं है, तो वे कहते हैं यह जो हमें दिखाई पड़ रहा है सिर्फ संघटन है, सिर्फ संघात है, सिर्फ एक कंपोजीशन है। जैसे रथ है--उसका चाक अलग कर लें, घोड़े अलग कर लें, बल्ली अलग कर लें तो फिर रथ पीछे नहीं बचता! रथ सिर्फ एक जोड़ है। ऐसे ही तुम भी एक जोड़ हो। यह सारा जगत एक जोड़ है। चीजें टूट जाती हैं पीछे कुछ भी नहीं बचता। न कोई आत्मा, न कोई परमात्मा। और यही पाने योग्य है। लेकिन यह सदा बुद्ध भीतर कहते हैं। यह भी बाहर नहीं कहते। इसलिए जो बहुत गहरे समझ सकते हैं वही समझ पाते हैं; अन्यथा बुद्ध के पास से तृष्णालु व्यक्ति सभी लौट जाते हैं, जिसको कुछ भी पाना है। वह कहते हैं यह आदमी व्यर्थ है। इसके पास पाने को कुछ नहीं है शांत होने को हम नहीं आए हैं, हम कुछ पाने को आए हैं। और बुद्ध उन पर हंसते हैं। क्योंकि वे कहते हैं शांत होकर ही पाया जा सकता है। वह जो परमात्मा है, शांत होकर ही पाया जा सकता है। वह जो आत्मा है, उसे शांत होकर ही पाया जा सकता है। वह जो मोक्ष हैं, तुम उसको लक्ष्य मत बनाओ। तुम अगर मुझसे पूछोगे मोक्ष है? और मैं कहूं--है, तो तुम तत्काल लक्ष्य बना लोगे। और लक्ष्य की तरफ दौड़ता आदमी कभी शांत नहीं होता है। इसलिए बुद्ध की अपनी तकलीफ है। उनकी उपेक्षा शांति को ले जाती है--इतनी गहरी शांति में जहां कोई यात्रा ही नहीं है।

महावीर की वीतरागता, बुद्ध की शांति से मेल खाती है थोड़ी दूर तक। क्योंकि इस जगत में वे भी उपेक्षा के पक्ष में है। और थोड़ी दूर तक महावीर जीसस से मेल खाती है। क्योंकि उस जगत में मोक्ष के प्रति उनका चुनाव है। महावीर मोक्ष के प्रति अचुनाव में नहीं हैं। क्योंकि महावीर कहेंगे, अगर मोक्ष भी नहीं है तो फिर शांति होने का प्रयोजन ही क्या है? फिर अशांत होने में हर्ज भी क्या है? अगर कुछ पाने को ही नहीं है तो फिर चुप और मौन बैठने का प्रयोजन भी क्या है? महावीर कहेंगे कि सब छोड़ा जाए, तो कुछ पाने को है; और जो पाने को है उसी के लिए सब छोड़ा जो सकता है। इसलिए मोक्ष के प्रति महावीर की उपेक्षा नहीं है। वीतरागता उनकी, इस जगत का जो द्वंद्व है, उसके पार ले जानेवाली है, निर्द्वंद्व की उपलब्धि का मार्ग है। लेकिन महावीर

की वीतरागता किसी उपलब्धि का मार्ग है, बुद्ध की उपेक्षा अनुपलब्धि का द्वार है जहां सब शून्य हो जाएगा और सब खो जाएगा। बुद्ध का संन्यास एक अर्थ में पूर्ण है। उसमें परमात्मा की भी मांग नहीं है। महावीर के संन्यास में मोक्ष की जगह है। महावीर यह कहते हैं कि संन्यास संभव ही नहीं है, अगर मोक्ष नहीं है; तो फिर सब किस लिए? क्योंकि महावीर का चिंतन बड़ा वैज्ञानिक है। महावीर कहते हैं कि कार्य-कारण बिना कुछ होता ही नहीं। इसलिए वे बुद्ध से राजी नहीं होगे कि हम सिर्फ शांत हो जाएं बिना किसी वजह से। महावीर कहते हैं, अशांत होने की भी वजह होती है और शांत होने की भी वजह होती है। वे कृष्ण से भी राजी न होंगे इस बात के लिए कि हम सब कुछ स्वीकार कर लें। क्योंकि महावीर कहते हैं, अगर हम सब कुछ स्वीकार कर लेते हैं तो हम आत्मवान ही नहीं रह जाते हैं, हम तो पदार्थ की तरह हो जाते हैं। आत्मवान होने का अर्थ है डिसक्रिमिनेशन। महावीर कहते हैं, आत्मवान होने का अर्थ है विवेक--यह ठीक है, और यह गलत है, इस बात का विवेक ही आत्मवान होने का अर्थ है। और जो गलत है उसे छोड़ते जाना है। राग भी गलत है और विराग भी गलत है, इसलिए दोनों को छोड़ देना है और वीतरागता को पकड़ लेना है। महावीर के लिए वीतरागता उपलब्धि है, और वीतरागता से मोक्ष है। तो महावीर सिर्फ शांत ही नहीं है--शांत तो हैं ही, लेकिन आनंदित भी हैं। मोक्ष की उपलब्धि की किरणें उनके भीतर ही नहीं फैलती, उनके शरीर के चारों ओर नाचने लगती हैं। इसलिए अगर महावीर और बुद्ध को साथ-साथ खड़ा करें तो बुद्ध बिल्कुल पैसिव साइलेंस में हैं, जैसे हों ही नहीं। महावीर एक्टिव साइलेंस में हैं, बहुत होकर हैं। बहुत मजबूती से हैं। हां, उनके होने में चारों तरफ आनंद की प्रखरता है। लेकिन अगर कृष्ण के पास महावीर को खड़ा करें तो महावीर का आनंद भी साइलेंट मालूम पड़ेगा, शांत मालूम पड़ेगा, और कृष्ण का आनंद आंदोलित मालूम पड़ेगा। कृष्ण नाच सकते हैं, महावीर नाच नहीं सकते। अगर महावीर के नाच को देखना है तो उनकी शांति और मौन को उनकी थिरता में ही देखना होगा। वह दिखाई पड़ सकता है उनके रोएं-रोएं से, उनकी सांस-सांस से, उनकी अ के हिलने-डुलने से, उनके चलने से। सब तरफ से उनका आनंद दिखाई पड़ेगा; लेकिन वे नाच नहीं सकते। यह नाच देखना पड़ेगा। यह इनडाइरेक्ट है, यह परोक्ष है। तो महावीर की वीतरागता प्रकट रूप से आनंद को घोषित करती है। इसलिए महावीर की प्रतिमा और बुद्ध की प्रतिमा में वही फर्क है। महावीर की प्रतिमा में आनंद प्रकट होता मालूम पड़ेगा। बुद्ध एकदम भीतर चले गए हैं, उनके बाहर कुछ जाता हुआ मालूम नहीं पड़ता। वह बिल्कुल ऐसे हो गए हैं जैसे "न हों"। महावीर ऐसे हो गए हैं जैसे "हों"। महावीर स्वयं हो गए हैं, जैसे पूरी तरह के हैं। उनके अस्तित्व की घोषणा समग्र है, इसलिए महावीर ईश्वर को इंकार कर देते हैं लेकिन आत्मा को इंकार नहीं कर पाते। महावीर कह देते हैं कोई परमात्मा नहीं है--हो भी कैसे सकता है? मैं ही परमात्मा हूं। इसलिए महावीर कहते हैं, आत्मा ही परमात्मा है। तुम सब परमात्मा हो, कोई और अलग परमात्मा नहीं है। यह घोषणा उनकी प्रगाढ़ आनंद की एक्सटेसी से निकलती है। हर्षोन्माद में वे यह घोषणा करते हैं कि मैं ही परमात्मा हूं। कोई और ऊपर परमात्मा नहीं है। महावीर कहते हैं, अगर मुझसे ऊपर कोई भी परमात्मा है तो फिर मैं कभी पूरी तरह स्वतंत्र नहीं हो पाऊंगा। स्वतंत्रता की फिर कोई संभावना न रही। कोई एक परमात्मा ऊपर बैठा ही है। अगर मेरे ऊपर एक नियंता है, जिसके कानून से जगत चलता है, तो मेरी मुक्ति का क्या अर्थ है? कल अगर वह सोच ले कि वापस भेज दो इस मुक्त आदमी को संसार में, तो मैं क्या कर सकूंगा? इसलिए महावीर कहते हैं--स्वतंत्रता की गारंटी सिर्फ इसमें है कि परमात्मा न हो। परमात्मा और स्वतंत्रता दोनों साथ-साथ नहीं चल सकते हैं। इसलिए परमात्मा को इंकार कर देते हैं; लेकिन आत्मा को बड़ी प्रगाढ़ता से घोषित करते हैं कि आत्मा की परमात्मा है। इसलिए महावीर मग प्रकट आनंद दिखाई पड़ता है। वह उनकी वीतरागता है। वीतरागता में वे बुद्ध से सहमत

हैं अचुनाव के लिए। राग और विराग में चुनाव नहीं करना है; लेकिन संसार और मोक्ष में चुनाव नहीं करना है इस बात में वे बुद्ध से राजी नहीं हैं। वे कहते हैं-- संसार और मोक्ष में तो चुनाव करना ही है। इस मामले में वे जीसस से राजी हैं। इस मामले में जीसस की तटस्थता उनके करीब आती है। लेकिन जीसस का परमात्मा परलोक में है और मरने के बाद ही जीसस प्रसन्न हो सकते हैं, जब परमात्मा से मिल जाएं। महावीर का कोई परमात्मा परलोक में नहीं है। महावीर का परमात्मा भीतर है और वह यहीं पाकर प्रसन्न हैं। इसलिए जीसस उदास हैं पर महावीर उदास नहीं हैं।

कृष्ण की अनासक्ति का भी तीनों से कुछ तालमेल है और कुछ बुनियादी भेद भी है। कृष्ण को अगर हम इन तीनों के जोड़ से कुछ ज्यादा कहें तो कठिनाई नहीं है। कृष्ण की अनासक्ति उपेक्षा नहीं है। कृष्ण कहते हैं-- जिसके प्रति उपेक्षा हो गई उसके प्रति हम अनासक्त नहीं हो सकते। क्योंकि उपेक्षा भी विपरीत आ सकती है। रास्ते से मैं गुजरा और मैंने आपकी तरफ देखा ही नहीं। देखने में भी एक आसक्ति है, न देखने में भी एक आसक्ति है। सिर्फ विपरीत आसक्ति है, कि नहीं देखूंगा। और फिर कृष्ण कहते हैं--उपेक्षा किसके प्रति? क्योंकि परमात्मा के अतिरिक्त कुछ है ही नहीं। जिसके प्रति भी उपेक्षा हुई, वह परमात्मा ही है। यह जगत पूरा का पूरा ही अगर परमात्मा है, तो उपेक्षा किसके प्रति? और उपेक्षा करेगा कौन? और जो उपेक्षा करेगा वह अहंकार से मुक्त कैसे होगा? उपेक्षा करेगा कौन? मैं करूंगा उपेक्षा? बुरे की उपेक्षा करूंगा अच्छे के लिए, संसार की उपेक्षा करूंगा मोक्ष के लिए? करेगा कौन? और करेगा किसकी? इसलिए उपेक्षा जैसे नकारात्मक और कंडेमनेटरी, निंदात्मक शब्द का उपयोग कृष्ण नहीं कर सकते। तटस्थता का भी उपयोग वे नहीं कर सकते। क्योंकि कृष्ण कहेंगे परमात्मा खुद भी तटस्थ नहीं है, तो हम कैसे तटस्थ हो सकते हैं? तटस्थ हुआ नहीं जा सकता। कृष्ण कहते हैं-- हम सदा धारा में हैं, तट पर हो नहीं सकते। जीवन एक धारा है। जीवन का कोई तट है ही नहीं जिस पर हम खड़े हो जाएं, और तटस्थ हो जाएं, और हम कह दें कि हम धारा के बाहर है। हम जहां भी हैं धारा के भीतर हैं; हम जहां भी हैं जीवन में हैं; हम जहां भी हैं अस्तित्व में हैं। तट पर हम खड़े हो नहीं सकते। होना ही--अस्तित्व ही धारा है। इसलिए तटस्थ हम होंगे कैसे? हां, नदी के किनारे हम तट पर खड़े हो जाते हैं। नदी बहती जाती है। हम तट पर खड़े रहते हैं। लेकिन जीवन की ऐसी कोई नदी नहीं है जिसके किनारे हम खड़े हो जाएं। जीवन की नदी का कोई किनारा ही नहीं है, तो तटस्थता शब्द का प्रयोग वह नहीं कर सकते। उपेक्षा शब्द का वे प्रयोग नहीं कर सकते। वीतराग शब्द का वे इसलिए प्रयोग नहीं कर सकते, क्योंकि वे यह कहते हैं कि अगर राग बुरा है, अगर विराग बुरा है तो है ही क्यों? बुरे का अस्तित्व भी कैसे हो सकता है? या तो हम ऐसा मानें कि जगत में दो शक्तियां हैं--एक शुभ की, परमात्मा की शक्ति है, एक अशुभ की, शैतान की शक्ति है। जैसा कि जरथुस्त्र मानते हैं, जैसा कि ईसाई मानते हैं, जैसा कि मुसलमान मानते हैं। उन सबकी तकलीफ यही है कि अगर जगत में अशुभ है तो फिर अशुभ की शक्ति हमें अलग करनी पड़ेगी परमात्मा से। अन्यथा परमात्मा फिर अशुभ का भी स्रोत है। वह जरथुस्त्र नहीं सोच पाए, मोहम्मद नहीं सोच पाए। जीसस भी राजी नहीं हैं। इसलिए शैतान, डेविल, अशुभ के लिए हमें कोई जगह बनानी पड़ती है। कृष्ण यह कहते हैं कि अगर अशुभ भी है, अलग भी है, तो भी क्या वह परमात्मा की आज्ञा से है, या परमात्मा की आज्ञा के बिना है? उसके होने में भी परमात्मा के सहारे की जरूरत है, या वह स्वतंत्र रूप से है? तो वह ठीक परमात्मा के समतुल शक्ति हो गई। फिर इस जगत में शुभ कभी भी फलित नहीं हो सकता। फिर वह हारेगा भी क्यों? हारने की जरूरत भी क्या है? फिर इस जगत में दो परमात्मा होंगे। और इस जगत में दो परमात्मा की कल्पना असंभव है। इसलिए कृष्ण कहते हैं-- शक्ति एक है और उसी शक्ति से सब उठता है। जिस शक्ति से स्वस्थ फल लगता है वृक्षों में, उसी शक्ति से सड़ा

हुआ फल भी लगता है। उसके लिए किसी अलग शक्ति के होने की जरूरत नहीं है। और जिस चित्त से बुराई पैदा होती है उसी चित्त से भलाई पैदा होती है। उसके लिए अगल शक्ति की जरूरत नहीं है। शुभ और अशुभ एक ही शक्ति के रूपांतरण है। अंधकार और प्रकाश एक ही शक्ति के रूपांतरण हैं। इसलिए कृष्ण यह कहते हैं कि मैं दोनों को छोड़ने को नहीं कहता। दोनों को उनकी समग्रता में जीने को कहता हूं।

अनासक्ति का अर्थ, एक के पक्ष में दूसरे की आसक्ति नहीं, शुभ के पक्ष में अशुभ की आसक्ति नहीं। आसक्ति ही नहीं, चुनाव ही नहीं और जीवन जैसा है वह समग्र जीवन की पूर्ण स्वीकृति और इस समग्र जीवन के प्रति स्वयं का पूर्ण समापन, पूर्ण समर्पण। "आसक्ति" का अर्थ यह है कि मैं अलग हूं ही नहीं, एक ही हूं इस जगत में। कौन चुने, किसको चुने? जगत जैसा करवा रहा है वैसा मैं लहर की तरह सागर में बहा जा रहा हूं। मैं अगल हूं ही नहीं। इसमें कुछ समानताएं मिलेंगी। कृष्ण, बुद्ध--जैसी शांति को उपलब्ध हो जाएंगे, क्योंकि कुछ उन्हें पाना नहीं है। जो भी है, वह पाया हुआ है। वे महावीर जैसे वीतराग दिखाई पड़ेंगे किन्हीं क्षणों में, क्योंकि उनके आनंद का कोई परावार नहीं है। वे जीसस जैसे परमात्मा की घोषणा करते दिखाई पड़ेंगे, इसलिए नहीं किस लोक में और ऊपर के लोक में परमात्मा कहीं बैठा है, बल्कि सब कुछ परमात्मा ही है। कृष्ण की अनासक्ति समग्र समर्पण है, मैं का "न" हो जाना है, "मैं" है ही नहीं यह जानना है। इसके जान लेने के बाद, जो हो रहा है वह हो रहा है! इसमें कोई उपाय ही नहीं। इसमें हम कुछ कर सकते हैं, ऐसा है ही नहीं है। इसमें हमारे द्वारा कुछ हो सकता है, इसकी कोई संभावना ही नहीं है। कृष्ण अपने को एक लहर की तरह सागर में देखते हैं। कोई चुनाव नहीं करना है, इसलिए कोई आसक्ति नहीं है। अनासक्ति की यह स्थिति अगर ठीक से हम समझें तो स्थिति नहीं है, स्टेटस आफ माइंड नहीं है, यह समस्त स्टेटस आफ माइंड को छोड़ देना है। समस्त स्थितियों को छोड़ देना है और अस्तित्व के साथ एक हो जाना है। इसमें कृष्ण वहीं पहुंच जाते हैं जहां अपनी-अपनी संकरी गलियों से महावीर पहुंच जाते हैं, जीसस पहुंच जाते हैं, बुद्ध पहुंच जाते हैं। लेकिन उनके चुनाव पगडंडियों के हैं। कृष्ण का चुनाव राजपथ का है। पगडंडियों वाला भी पहुंच जाता है। पगडंडियों की सुविधाएं भी हैं, असुविधाएं भी हैं। राजपथ की सुविधाएं हैं, असुविधाएं भी हैं।

व्यक्तिगत चुनाव है। कुछ लोग हैं पगडंडियों पर ही चलना पसंद करेंगे। उन्हें चलने का मजा ही तब आएगा जब पगडंडी होगी, जब वे अकेले होंगे, जब न कोई आगे होगा, न कोई पीछे होगा। जब भीड़ के धक्के न होंगे, और जब प्रतिपल उन्हें रास्ते खोजने पड़ेंगे घने जंगल में, तभी उनकी चेतना को चुनौती होगी। वह पगडंडियों को खोज कर ही पहुंचेंगे। कुछ लोग हैं जो पगडंडियों पर चलना बिल्कुल आनंदपूर्ण न पाएंगे। अकेला होना उन्हें भारी पड़ जाएगा। सबके साथ होना ही उनका होना है, सबके साथ ही उनका आनंद है। आनंद उनके लिए सह-जीवन, सहयोग में, साथ में हैं, संग में हैं। राजपथ पर चलेंगे। निश्चित ही, पगडंडियों पर चलनेवाले उदास चित्त ही चल सकते हैं। राजपथ पर चलनेवाले उदासी से चलेंगे तो पगडंडियों पर धक्का दे दिए जाएंगे। राजपथ पर, जहां लाखों लोग चलेंगे, तो पगडंडियों पर धक्का दे दिए जाएंगे। राजपथ पर, जहां लाखों लोग चलेंगे, वहां नाचते हुए ही चला जा सकता है, वहां गीत गाते हुए ही चला जा सकता है। पगडंडियों पर चलनेवाले शांति से चल सकते हैं, राजपथ पर चलने वालों पर अशांति के बादल भी आते रहेंगे। उनको उसके लिए भी राजी होना पड़ेगा। यही उनकी शांति होगी। पगडंडी पर नाचने वाले अपनी निपट निजता के आनंद में तल्लीन हो सकते हैं। राजपथ पर चलने वालों को दूसरों के सुख-दुख में भागीदार भी होना पड़ेगा। यह सब भेद होंगे। लेकिन कृष्ण, जैसा मैंने कहा, मल्टी डाइमेंशनल हैं। उनका चुनाव राजपथ का है। और ठीक से अगर हम समझें तो परमात्मा तक पहुंचने का कोई एक मार्ग नहीं बन सकता है कि वह परमात्मा तक पहुंचा दे। परमात्मा

तक पहुंचने के लिए कोई बना हुआ मार्ग नहीं है। सब अपनी तरह से, अपने ढंग से पहुंच सकते हैं। पहुंचने पर, यात्रा एक ही मंजिल पर पूरी हो जाती है--उनकी भी, जो वीतरागता से जाते हैं, उनकी भी, जो तटस्थता से जाते हैं, उनकी भी, जो उपेक्षा से जाते हैं, उनकी भी, आनंद से जाते हैं।

मंजिल एक है, रास्ते अनेक हैं। प्रत्येक व्यक्ति को, उसके जो अनुकूल है, उसे चुन लेना चाहिए। उसे इसकी बहुत चिंता नहीं करनी चाहिए कि कौन गलत है, कौन सही है। उसे जानना चाहिए कि उसके अनुकूल, उसके स्वभाव के अनुकूल क्या है।

पांचवां प्रवचन

प्रेम नगर के पथ पर

प्रेम के गीत आदमी हजारों वर्षों से गाता रहा है। सुनने में वे आनंदपूर्ण होते हैं। उनमें भरा हुआ भाव और संगीत भी हृदय को छूता है। लेकिन यह बात स्मरण रहे कि आदमी ने अब तक प्रेम के गीत गाए हैं। प्रेम को नहीं जाना, और प्रेम के गीत के कारण यह भूल भी बहुत लोगों को पैदा हो गई कि मनुष्य के हृदय में प्रेम है और हम एक दूसरे को प्रेम करते हैं। अभी तक प्रेम का नगर बस नहीं सकता है। गीत सुंदर हैं लेकिन गीत सच्चे नहीं हैं! अभी प्रेम के नगर को बसने में देर है। यह सत्य कितना ही कटु मालूम हो लेकिन इस सत्य को सोच लेना जरूरी है कि गीतों में हम जो गाते रहे हैं कहीं वे झूठ तो नहीं हैं? कहीं वे मन को समझा लेने की बात तो नहीं है? कहीं ऐसा तो नहीं है कि जीवन में जो नहीं है उसे गाकर हम पूर्ति कर लेते हैं? सच्चाई यही है कि गीत और हमारी जिंदगी में बड़ा फर्क है। अगर कोई हमारे गीतों को सुनेगा तो भ्रम में पड़ जाएगा। शायद गीत खबर दे कि हम सच में ही प्रेम के नगर में रह रहे हैं। लेकिन सच्चाई यह है कि अब तक का मनुष्य का पूरा इतिहास घृणा के नगर में रहने का इतिहास है, प्रेम के नगर में रहने का नहीं। प्रेम के गीत बहुत सुंदर है, लेकिन यह मत भूल जाना कि वह केवल सपना है सच्चाई नहीं है। एक दिन सपने को पूरा करना है। वह सपना अभी पूरा नहीं हुआ। वस्तुतः हम घृणा, और हिंसा में जीते हैं। मैं चाहता हूं कि कभी एक नगर बसे जो प्रेम का हो, कभी एक पृथ्वी बसे जो प्रेम की हो। और जब मैं यह कह रहा हूं कि अभी यह नगर बसा नहीं है तो इस स्वप्न को बहुत समझ लेने की जरूरत है कि ऐसा क्यों हो रहा है?

पिछले तीन हजार वर्षों में 15 हजार युद्ध पूरी पृथ्वी पर हुए। क्या प्रेम करने वाले लोग, क्या प्रेम से भरे हृदय निरंतर हत्या को, हिंसा को उत्सुक होते हैं? एक वर्ष में पांच युद्ध प्रेम की खबर नहीं है। ये कोई छोटे-मोटे युद्ध नहीं थे, बहुत बड़े थे जिन्होंने जीवन को पूरी तरह नष्ट किया है, प्राणों को बहुत आघात पहुंचाए हैं, सब तरह की बरबादी और विनाश लाए हैं। पिछले महायुद्ध में पांच करोड़ लोगों की हत्या हुई। उससे पहले प्रथम महायुद्ध में साढ़े तीन करोड़ लोगों की हत्या हुई, और अब हम एक ऐसे युद्ध की तैयारी कर रहे हैं जिसमें संख्या का सवाल नहीं होगा, सब की हत्या होगी। तीसरे महायुद्ध की तैयारियां इतनी आत्मघाती हैं कि विश्वास करने में भी नहीं आता कि आगे दुनिया रहे। सारी जमीन पर अब तक हम अपनी शक्तियों का आधा हिस्सा युद्ध में लगाते रहे। दुनिया में इतनी गरीबी है, इतनी परेशानी है, इतने लोग नंगे और भूखे हैं, लेकिन जिनके पास धन हैं वे उस धन का उपयोग रोटी बांटने में नहीं, अणुबम बनाने में कर रहे हैं। इस समय कुल 50 हजार उदजन बम हैं। इतने ज्यादा हैं, इतनी जरूरत से ज्यादा है जिसका कोई हिसाब नहीं। जिस पृथ्वी पर हम रहते हैं--ऐसी सात पृथ्वियों को अगर नष्ट करना हो तो ये बम काफी हैं। हमने युद्ध की इतनी सामग्री तैयार की है कि वे कम से कम 50 अरब लोगों की हत्या करने के लिए काफी हैं। एक वैज्ञानिक ने अभी-अभी कहा कि हम एक आदमी को सात बार मारने में समर्थ हैं। हालांकि एक आदमी एक ही बार में मर जाता है, दुबारा मारने की आज तक जरूरत नहीं पड़ी। लेकिन फिर भी भूल-चूक के लिए इंतजाम कर लेना काफी है। कोई आदमी एक बार में बच जाए तो दुबारा मार सकें, दुबारा बच जाए तो तीसरी बार, पर सात बार में बहुत कम संभव है कि कोई आदमी बच जाए। हमने मृत्यु का अतिरिक्त इंतजाम कर रखा है। कैसे प्रेम करने वाले लोग होंगे ये? किसलिए इंतजाम? और इंतजाम इतना घातक है जिसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। 25 सौ डिग्री पर लोहा भाप बनकर उड़ता है

और इस 10 करोड़ डिग्री के एक उदजन बम का कितनी दूर तक प्रचार क्षेत्र होगा? चालीस हजार वर्ग मील की सीमा के भीतर 10 करोड़ डिग्री गरमी का उत्ताप पैदा कर देगा। वहां सब जल कर राख हो जाएगा। ऐसे हमने 50 हजार उदजन बम तैयार कर रखे हैं। और हम प्रतीक्षा में हैं कि कब उनका प्रयोग करें। क्या ये प्रेम से रहने वाले लोगों के लक्षण हैं? क्या प्रेम ये सब ईजाद करेगा? क्या इससे खबर मिलती है कि आदमी का हृदय प्रेमपूर्ण है? और तुम यह मत सोचना कि ये दूसरे मुल्कों की बात है। सारी पृथ्वी पर राजनीतिज्ञों का मन बहुत हिंसा से भरा हुआ है। राजनीतिज्ञ सारी पृथ्वी पर एक जैसे हैं। इसमें कोई फर्क नहीं पड़ता कि वे किस मुल्क के हैं। उन सब की तैयारी अपनी-अपनी सीमाओं में यही है, यद्यपि वे बातें दूसरी करते हैं। वे यह नहीं कहते कि वे आक्रमण के लिए तैयारी करते हैं। वे कहते हैं कि हम रक्षा के लिए तैयारी करते हैं। तुम्हें पता होगा दुनिया में किसी मुल्क का भी युद्ध का विभाग रक्षा का विभाग कहलाता है। यह बात बिल्कुल झूठी है। अगर दुनिया के सब युद्ध-विभाग रक्षा के विभाग हैं, तो आक्रमण कौन करता है? अब तक जमीन पर आक्रमण कौन करता रहा? ये सब रक्षा करते हैं, तो क्या आक्रमण कोई आसमान से, चांद-तारों से करने आता है? आज तक दुनिया के किसी मुल्क ने यह नहीं माना है कि मैंने आक्रमण किया है। हर मुल्क यह कहता है कि हम अपनी रक्षा करते हैं। रक्षा के नाम पर की गई तैयारी अंत में हिंसा और युद्ध की तैयारी सिद्ध होती रही है। हमेशा घृणा को प्रेम के नाम पर फैलाने की कोशिश की जाती है, ताकि दिखाई न पड़े। सारी दुनिया में कहा जाता है अपने देश को प्रेम करो, राष्ट को प्रेम करो, मातृभूमि को प्रेम करो। पर ये प्रेम नहीं हैं। यह दूसरे मुल्कों को घृणा करने का पाठ है। जब कोई कहता है, "अपने देश को प्रेम करो" उसकी बुनियाद में "दूसरे देशों को घृणा करो", यह भाव छिपा है। जब कोई कहता है, "सारे जहां से अच्छा हिंदुस्तां हमारा", तो यह आदमी खतरनाक है, यह आदमी अच्छा नहीं है। जो कोई यह कहता है सारे जहां से हमारा हिंदुस्तां अच्छा है वह आदमी घृणा का जहर फैला रहा है। जिसका हमें कोई पता नहीं। हमें तो यही लगेगा कि यह अपने मुल्क से प्रेम करता है, इसलिए ऐसी बातें कह रहा है। एक मुल्क को प्रेम की बात सिखाना, एक धर्म को प्रेम की बात सिखाना, एक खास तरह की चमड़ी के रंगवालों को प्रेम की बात सिखाना, प्रेम के लिए सीमा बांधना, हमेशा घृणा सिखाने का उपाय रहा है। जब कोई कहता है, "सब इकट्ठे जो जाओ, हिंदुस्तानी इकट्ठे हो जाओ, प्रेम से सब इकट्ठे हो जाओ" तो तुम इस भूल में मत पड़ जाना कि यह प्रेम की शिक्षा दी जा रही है। आदमी आज तक प्रेम के लिए कभी इकट्ठे नहीं हुए है। हमेशा किसी को घृणा करने के लिए, किसी का अंत करने के लिए, किसी को समाप्त करने के लिए इकट्ठे होते हैं। वे कहते यह हैं कि हम आपस में प्रेम करते हैं, इसलिए संगठित हो रहे हैं लेकिन असलियत यह होती है कि वे किसी को घृणा करते हैं, इसलिए संगठित होते हैं। हिंदुस्तान पर कुछ वर्ष पहले हमला हो गया, तो हिंदुस्तान में एकता की लहर दौड़ गई। एक बहुत बड़े राजनीतिज्ञ ने कहा, "यह तो बड़े स्वागत की बात है। देखिए, सारा हिंदुस्तान कैसा इकट्ठा हो गया? कितनी प्रेमपूर्ण खबर है?" मैंने उनसे कहा, "इस धोखे में मत पड़ जाना कि यह प्रेम है। यह सिर्फ दुश्मन के प्रति घृणा है। घृणा में आदमी इकट्ठा हो जाता है। जब दुश्मन चला जाएगा, आदमी फिर स्थिर हो जाएगा। फिर सारी एकता समाप्त हो जाएगी।" अगर गुजरातियों और महाराष्टीयों में झगड़ा हो तो गुजराती इकट्ठा हो सकता है, महाराष्टीय इकट्ठा हो सकता है। अगर हिंदी बोलने वालों और गैर-हिंदी बोलने वालों में झगड़ा हो तो वे इकट्ठे हो सकते हैं, हिंदू इकट्ठा हो सकता है मुसलमान के खिलाफ, मुसलमान इकट्ठा हो सकता है हिंदू के खिलाफ। लेकिन अब तक जमीन पर प्रेम का संगठन नहीं रहा है। सब संगठन मूलतः घृणा के संगठन रहे हैं। जब भी कोई बुरा काम करना हो तो नारा हमेशा अच्छा देना पड़ा है। अच्छे नारे की आड़ मग बुरे काम किए जा सकते हैं। बुरा काम सीधा नहीं किया जा सकता, इसलिए घृणा फैलानी हो तो प्रेम का नारा

देना पड़ता है। हिटलर ने जर्मनी में कहा कि जर्मनी के लोग इकट्ठे हो जाओ, एक दूसरे को प्रेम करो। किसी को पता नहीं था कि यह आदमी जर्मन कौम को प्रेम के नाम पर इकट्ठा कर रहा है। कल सारी जमीन को रूंध डालेगा। किसी को कल्पना नहीं थी कि यह होने वाला है। यह हुआ। आदमी के भीतर बड़ा धोखा है; वह जो बातें कहता है वही सच्ची नहीं होती हैं। भीतर कुछ ठीक उलटा छिपा होता है और उस उलटे को हम कभी नहीं पहचान पाते, क्योंकि ऊपर शब्द बहुत अच्छे हैं।

एक बहुत पुरानी कथा है। परमात्मा ने सारी दुनिया बनाई। फिर उसने एक सौंदर्य की देवी बनाई और एक कुरूप की देवी भी। उन दोनों को पृथ्वी पर भेजा। आकाश से जमीन पर आते-आते उनके कपड़े मैले हो गए। रास्ते की धूल जम गई। वे जमीन पर उतरीं तब सुबह सूर्य निकलने के करीब था। थोड़ी देर थी, भोर हो गई थी, पक्षी गीत गाते थे। वे सरोवर के किनारे आकर उतरीं और उन्होंने सोचा कि इसके पहले कि हम पृथ्वी की यात्रा पर जाएं, उचित होगा कि हम स्नान कर लें। वे दोनों देवियां कपड़े उतारकर सरोवर मग स्नान करने को उतरीं। सौंदर्य की देवी तैरती हुई आगे चली गई, उसे कुछ भी पता न था कि पीछे कोई धोखा हो जाने को है। कुरूपता की देवी किनारे पर वापस आई और सौंदर्य की देवी के कपड़े पहन कर भाग खड़ी हुई। जब लौटकर सौंदर्य की देवी ने देखा, तो वह हैरान हो गई। वह नग्न थी, सुबह होने के करीब था। सूर्य निकलने को था। गांव के लोग जागने लगे थे। उसके कपड़े कुरूपता की देवी पहनकर भाग चुकी थी। कुरूपता के कपड़े पहनकर वह उसका पीछा करे, इसके सिवा और कोई रास्ता नहीं था। वह किनारे गई, मजबूरी में उसने कुरूपता के कपड़े पहने और भागी अपने कपड़े वापस लेने को। लेकिन कथा कहती है कि वह अब तक भी पकड़ नहीं पाई। कुरूपता अब भी सौंदर्य के कपड़े पहने घूम रही है। सौंदर्य की देवी उसका पीछा कर रही है, पर अभी तक पकड़ में नहीं आई। हमेशा कुरूपता सौंदर्य के वस्त्र पहन लेना पसंद करती है चूंकि तब उसे गति मिल जाती है, तब उसका सिक्का चल पड़ता है। घृणा प्रेम के वस्त्र पहन लेती है, असत्य सत्य के वस्त्र पहने लेता है, इसलिए वस्त्रों से सावधान हो जाने की जरूरत है। वस्त्रों को देखकर यह मत सोच लेना कि प्रेम का नगर बस गया है और हम उसके निवासी हैं। वस्त्र प्रेम के हैं पर भीतर आदमी पूरी तरह से घृणा से भरा हुआ है घृणा हजार तरह की है। चूंकि प्रेम के शब्दों में छिपा लिया गया है, हम पहचान भी नहीं पाते कि यह घृणा है और जब तक उसे न पहचानें तब तक उससे छुटकारा भी कैसे हो सकता है? मैं हिंदू हूं, तुम मुसलमान हो, तुम ईसाई हो, तुम जैन हो, तुम बौद्ध हो--ये सब घृणा के रूपांतर है। तुम समझ लो कि जब मैं मनुष्यता के साथ इसी तरह का भेद अपने मन में रखता हूं, तो मैं कोई दीवाल खड़ी करता हूं। जब मैं कहता हूं कि मैं हिंदू हूं तब मैं यह कहता हूं कि मैं सारे लोगों से पृथक और भिन्न हूं। जब मैं कहता हूं कि मैं मुसलमान हूं तब भी यही कहता हूं। जब हम कहते हैं "हिंदू-मुस्लिम भाई-भाई" और "अल्लाह ईश्वर तेरे नाम" तब ये बातें सत्य नहीं हैं क्योंकि यदि यह समझ में आ गा हो कि अल्लाह और ईश्वर एक ही शक्ति के नाम हद्द तो यह भी समझ में आ जाएगा कि सिर्फ इस बात को कहने का भी कोई अर्थ नहीं कि अल्लाह ईश्वर एक के ही नाम हैं, उसको दुहराने की भी जरूरत नहीं है।

हेनरी थोरी अमेरिका का एक बहुत बड़ा विचारक था। वह मरने के करीब था। वह कभी चर्च में नहीं गया था। उसे कभी किसी ने प्रार्थना करते नहीं देखा था। मरने का वक्त था, तो उसके गांव का पादरी उससे मिलने गया। उसने सोचा यह मौका अच्छा है, मौत के वक्त आदमी घबड़ा जाता है। मौत के वक्त डर पैदा हो जाता है, क्योंकि अनजाना रास्ता है मृत्यु का। न मालूम क्या होगा? उस वक्त भयभीत आदमी कुछ भी स्वीकार कर सकता है। मौत का शोषण धर्मगुरु बहुत दिनों से करते रहे हैं। इसलिए तो मंदिरों, मस्जिदों में बूढ़े लोग दिखाई पड़ते हैं। पादरी ने हेनरी थोरी से जाकर कहा, "क्या तुमने अपने और परमात्मा के बीच शांति स्थापित

कर ली है? क्या तुम दोनों एक दूसरे के प्रति प्रेम से भर गए हो?" हेनरी थोरी मरने के करीब था। उसने आंखें खोलीं और कहा, "महाशय, मुझे याद नहीं पड़ता है कि मैं उससे कभी लड़ा भी हूं। मेरा उससे कभी झगड़ा नहीं हुआ तो उसके साथ शांति स्थापित करने का सवाल कहां है? जाओ, तुम शांति स्थापित करो, क्योंकि जिंदगी में तुम उससे लड़ते रहे हो। मुझे तो उसकी प्रार्थना करने की जरूरत नहीं है। मेरी जिंदगी ही प्रार्थना थी।" कोई मरा हुआ आदमी ऐसा कहेगा, इसकी हम कल्पना नहीं कर सकते, लेकिन बड़ी सच्ची बात उसने यह कही कि अगर मैं उससे लड़ा होता, अगर एक पल को मेरे और उसके बीच कोई शत्रुता खड़ी हुई होती तो फिर मैं शांति स्थापित करने की कोशिश करता। लेकिन नहीं, वह तो कभी हुआ नहीं है। किसके बीच, कैसी शांति, कैसे स्थापित करूं? अगर अल्लाह, परमात्मा और भगवान एक के ही नाम हैं तो इन दोनों को मिलाने की कोशिश नहीं हो सकती। कोई मिलाने की कोशिश नहीं हो सकती। कोई मिलाने का सवाल नहीं है। उन दोनों में कोई भिन्न बातें नहीं है लेकिन हम मिलाने की कोशिश कर रहे हैं। उस मिलाने की कोशिश के पीछे भेद है, वह भेद खड़ा हुआ है। उस भेद को हम गीत गाकर छिपाना चाहें तो वह छिपनेवाला नहीं है। ज्यादा से ज्यादा इतना होता है कि उसको हम सहने लगते हैं। तुम मुसलमान हो, यह ठीक है, हम हिंदू हैं, यह ठीक है। हम एक दूसरे को सहते हैं लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि हमारे बीच प्रेम पैदा हो गया। प्रेम पृथकता को जानता ही नहीं; और जहां पृथकता हो वहां समझ लेना प्रेम की बातें हैं, पर भीतर घृणा मौजूद है। प्रेम ने कभी पृथकता को नहीं जाना। प्रेम कभी फासले नहीं जानता, दूसरी नहीं जानता। लेकिन हम तो हर तरह से दीवालों में बंधे रहे हैं न मालूम कितने तरह की दीवालें हमने खड़ी कर रखीं है और ये दीवालें भी बढ़ाते चले जाते हैं। अगर प्रेम हमारे भीतर पैदा हुआ है या होने का है, उसके अंकुरित होने की शुरुआत हुई है, तो गिरा दो उन दीवालों को जो तुम्हें किसी भी मनुष्य से दूर करती हों। उन शब्दों को अलग कर दो जो तुम्हारे और दूसरे मनुष्य के बीच फासला पैदा करते हों और स्मरण रखो कि किसी भी तरह की सीमा-रेखा मूलतः हिंसात्मक मन का लक्षण है।

हमारा पुराना शब्द है संग्राम। शायद तुम्हें ख्याल भी न हो, शब्दकोश में पढ़ने जाओगे तो पता चलेगा¬संग्राम का अर्थ है "युद्ध" लेकिन और गहरी खोज करोगे तो तुम्हें पता चलेगा संग्राम का मतलब होता है; दो गांवों की सीमा, दो गांवों को अलग करनेवाली रेखा। कब यह शब्द युद्ध का पर्यायवाची बन गया? कुछ पता नहीं है लेकिन यह बड़ा अर्थपूर्ण है। जहां दो गांवों के बीच सीमा है, वहां युद्ध भी है। जहां सीमा है वहां युद्ध भी है। जहां दो आदमियों के बीच सीमाएं हैं वहां भी युद्ध है। प्रेम की दुनिया तो उस दिन बन सकेगी, जिस दिन राष्ट की कोई सीमाएं न हों। भारत की, पाकिस्तान की, चीन की और जापान की कोई सीमाएं न हों। सीमाएं हैं तो प्रेम की दुनिया नहीं बन सकती। हिंदू और मुसलमान, जैन और बुद्ध की कोई सीमा न हो, उस दिन कोई दुनिया बन सकेगी जो प्रेम की हो। स्त्री और पुरुष की कोई सीमा न हो, दरिद्र और अमीर की कोई सीमा न हो, तो उस दिन कोई जगत बन सकेगा जो प्रेम का हो। लेकिन इतनी सीमाओं वाला जगत प्रेम का कैसे हो सकता है? कण-कण पर सीमाएं हैं। इंच-इंच पर सीमाएं हैं। हजारों सीमाओं में आदमी विभाजित है, और फिर हम बैठ कर प्रेम का गीता गा लेते हैं; अच्छे लगते हैं वे गीत, लेकिन वे गीत सच्चे नहीं हैं।

सबसे पहले निश्चित ही प्रेम की एक दुनिया बनानी है। आने वाले नए बच्चे ही उसे बनाएंगे। पुराने लोग उसे नहीं बना सके। असफल हो गए। अगर तुमने भी पुराने लोगों का अनुकरण किया तो तुम भी नहीं बना सकोगे। तुम भी अगर अपने शिक्षक, अपने गुरु, अपने पिता, अपनी माता की दुनिया के अनुकरण करने वाले बने, तो तुम भी प्रेम की दुनिया नहीं बना सकते। उन्होंने जो बनाया है वह घृणा का जाल है और उनका ही अगर तुमने पीछा किया तो तुम समझ रखना कि तुम फिर एक ऐसी ही दुनिया बना लोगे जिसमें घृणा होगी,

हिंसा होगी। हां, प्रेम के गीत होंगे, जो हमेशा से हैं, हजारों साल से हैं। कितने प्रेम के गीत, और कैसी दुनिया? दुनिया बिल्कुल उलटी है। गीत बिल्कुल अलग हैं। गीत से दुनिया का वास्ता नहीं है।

पिछली पीढ़ियों ने घृणा का संसार बसाया था, इस तथ्य को जान लेना चाहिए। पिछली पीढ़ियों से तुम्हारी पीढ़ी मग कोई चीज टूट जानी चाहिए, जिसका कोई संबंध न रह जाए। एक खाई पैदा हो जानी चाहिए तुम में और तुम्हारे मां-बाप की दुनिया में। तुम्हारे मां-बाप की दुनिया और तुम्हारे बीच कोईशृंखला खंडित हो जानी चाहिए। कोई नई कड़ी निर्मित होनी चाहिए और उस नई कड़ी का पहला सूत्र होगा "जीवन में जहां-जहां तुम्हें सीमा मालूम पड़े वहां-वहां अपने को सीमा से मुक्त करने की कोशिश करना।" जहां-जहां सीमा मालूम पड़े¬जहां-जहां आ जाए दीवाल, तुम्हारे और दूसरे मनुष्य के बीच¬वहां-वहां स्मरण रखना कि दीवाल को हटा देना है और आत्मा को वहां तक फैलाना है जहां फिर कोई दीवाल न रह जाए। फिर चाहे वह दीवाल धर्म की हो, चाहे धन की हो, चाहे प्रतिष्ठा की हो, चाहे राष्ट की हो, चाहे कोई भी हो¬इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। दीवाल को पहचानने की कोशिश करना।

जिस चीज ने प्रेम के संसार को नहीं बसने दिया है, वह और भी गहरी है। वह हमारे भीतर है। वह और भी गहरी है। मनुष्य के चित्त में इतनी घृणा, इतनी ईर्ष्या इतना द्वेष क्यों पैदा होता है? मनुष्य के भीतर से इतना अप्रेम क्यों निकलता है? हम एक बात पर अगर ध्यान न देंगे तो फिर प्रेम नहीं निकल सकता। वह बात है "महत्वाकांक्षा"। जिस आदमी का चित्त महत्वाकांक्षी है वह आदमी प्रेमपूर्ण नहीं हो सकता, क्योंकि महत्वाकांक्षा हमेशा दूसरे से संघर्ष करने को कहती है। और प्रेम? प्रेम दूसरे के लिए छोड़ने को कहता है, महत्त्वाकांक्षा दूसरे से छीनने को कहती है। अगर तुम एक कक्षा में हो तो बचपन से जहर पिलाना शुरू किया जाता है कि तुम हमेशा आगे होना, पीछे मत। पहले नंबर आना, और जो बच्चे पहले नंबर आते हैं वे पुरस्कृत होते हैं। पीछे छूट जाते हैं वे अपमानित होते हैं। क्या तुम्हें पता है कि पहले आने का रोग तुम्हारे जीवन से प्रेम को हमेशा के लिए छीन लेगा? शायद तुम्हें ख्याल भी न होगा। शायद तुम कहोगे कि इससे और प्रेम से क्या संबंध? लेकिन इससे प्रेम का इतना संबंध है जितना और किसी बात से नहीं। जब हम किसी को पीछे करते हैं और आगे आने में सुख पाते हैं तो सुख में दूसरे का दुख छिपा हुआ होता है। जब मैं आगे आता हूं और मुझे खुशी होती है तो मुझे जानना चाहिए कि जो पीछे छूट गया है वह दुखी होता है। तो मेरे आगे आने का सुख दूसरे को दुख देने पर निर्भर है, और अगर मुझे बचपन से ही यह आदत हो गई कि मेरा सुख दूसरे को दुख देने पर निर्भर हो जाए तो क्या मेरे जीवन में कभी प्रेम हो सकेगा? प्रेम का अर्थ हैः मेरा सुख दूसरे को सुख देने पर निर्भर हो। घृणा का अर्थ हैः मेरा सुख दूसरे को दुःख देने पर निर्भर हो। घृणा का अर्थ है मेरा सुख दूसरे को दुख देने पर निर्भर है, लेकिन तुम कहोगे हम तो पहले आने की कोशिश करते हैं, हमें किसी से क्या प्रयोजन! लेकिन क्या तुम नहीं कह सकोगे यह बात कि तुम्हारी आगे आने की कोशिश में ही दूसरे का पीछे छूट जाना अनिवार्य रूप से निहित नहीं है?

एक गांव में एक मेरे मित्र थे। उन्होंने एक बड़ा मकान बनाया था। वे बहुत खुश थे। उनका मकान बहुत बड़ा था, बहुत सुंदर था। उस गांव में वैसा कोई मकान नहीं था। वे कहने लगे, "मैं बहुत प्रसन्न हूं। सब सुविधा है मकान में। सब अच्छा है।" मैंने उनसे कहा, "शायद तुम्हारी प्रसन्नता इस कारण से भी हो कि इस गांव में ऐसा कोई दूसरा मकान नहीं है।" उन्होंने कहा, "नहीं, ऐसी तो कोई बात नहीं है। मुझे दूसरे से क्या लेना-देना? मकान मेरा सुविधापूर्ण है, इससे मैं खुश हूं। दूसरे से इसका कोई संबंध नहीं।" फिर भाग्य की बात वह घड़ी आ गई। उन्हें पीछे लौटकर जाना पड़ा अपने शब्दों से। तीन-चार वर्ष बाद मैं उनके घर फिर मेहमान हुआ। फिर उस मकान की बात चली। इस बात वे उदास थे, क्योंकि बगल में एक बड़ा मकान खड़ा हो गया था। वे कहने लगे,

"आपने शायद ठीक ही कहा था। बगल के बड़े मकान ने मेरे चित्त को एकदम दुखी कर दिया। अब मैं समझ पाता हूं कि वह प्रसन्नता मेरे मकान के कारण न थी, वह शायद बगल में जो छोटे-छोटे झोपड़े थे उनके कारण ही थी।" बड़े मकान, बड़े मकान का मजा नहीं, किसी के झोपड़े होने का मजा है। धन का मजा, धन है, इसका नहीं; दूसरे निर्धन हैं, इसका मजा है। अच्छे वस्त्र पहने लेने का मजा इतना ही नहीं कि मेरे पास अच्छे वस्त्र हैं; बल्कि इसका मजा है कि दूसरे लोग नंगे खड़े हैं। अगर महत्वाकांक्षा यह पाठ सिखाती है तो क्या दुनिया कभी प्रेम की बन सकती है? पूछो अपने मन से। क्या यह संभव है? अगर महत्वाकांक्षा से भरा हुआ मन एक ही सुख को जानता हो कि दूसरों को कैसे पीछे छोड़ दूं; मैं कैसे आगे हो जाऊं, मकान में, पद में, प्रतिष्ठा में, यश में, तो वह किसी को प्रेम कर सकेगा? कैसे करेगा प्रेम? क्योंकि प्रेम कहता है हट जाओ। महत्त्वाकांक्षी चित्त कहता है हटाओ। क्राइस्ट ने एक वचन कहा है। वह बहुत अदभुत है। मनुष्य जाति के इतिहास में बहुत अदभुत वचन क्राइस्ट ने कहा है, "धन्य हैं वे लोग जो पीछे खड़े होने में समर्थ हैं।" क्राइस्ट ने धन्यता मानी है इस बात की कि जो पीछे खड़े होने समर्थ हैं, वे धन्य हैं। लेकिन हम सब तो प्रथम खड़े होने के लिए विक्षिप्त हुए जा रहे हैं, पागल हुए जा रहे हैं। यह मत सोचना कि आगे होने की दौड़ एक ही दिशा में जाता है, तो आगे होना चाहता है। एक आदमी सेवा करता है समाज में, तो वह आगे होना चाहता है। वह भी चाहता है कि इस गांव में कोई सेवक न रह जाए। वह चाहता है कि इस नगर में मुझसे बड़ा कोई सेवा करनेवाला नहीं हो। मैं सेवक, मुझसे आगे कोई भी नहीं। अगर सेवा में आगे होने का ख्याल हो सकता है तब तो सेवा भी एक महत्वाकांक्षा होगी। और ऐसी महत्वाकांक्षा कितना दुख, कितना दरिद्रता पैदा करती है? कितनी दीनता पैदा करवाती है? यदि सभी लोग इस दौड़ में हों तो समाज एक युद्ध का स्थल न बन जाएगा तो क्या होगा? लेकिन यह हमें सिखाया जा रहा है हजारों साल से। शिक्षा का केंद्र महत्वाकांक्षा है। जो जितना महत्वाकांक्षी होता है वह उतना ही सफल हो जाता है। वह विश्वविद्यालय से स्वर्ण पदक लेकर निकलता है। सम्मानित होकर निकलता है। फिर वह जिंदगी में दूसरी दौड़ में लग जाता है। चौबीस घंटे वह लोगों को हटा रहा है, हटो, मुझे रास्ता दो। यह मांग घृणा की ही मांग है, प्रेम की मांग नहीं है। इसलिए बाहर सीमाएं मिटानी हैं और भीतर महत्वाकांक्षा को बिदा देनी है। जिनको हम साधु और संत कहते हैं उनमें एक बड़ी दौड़ है कि कौन महा साधु हैं? कौन परम संत है! उनका मन भी ईर्ष्याग्रस्त हो जाता है कोई कह दे आप कुछ भी नहीं, आपसे बड़ा अमुक आदमी है तो चित्त में वही ईर्ष्या और जलन काम करने लगती है। वे भी इस दौड़ में पड़े हुए हैं कि मोक्ष में ऐसा न हो कि हम पीछे रह जाएं। अगर किसी ने दो कपड़े छोड़े हैं तो वे सारे कपड़े छोड़ कर नग्न खड़े हो जाते हैं कि कहीं हम पीछे न रह जाएं। पीछे रह जाने को कोई भी राजी नहीं है। सभी आगे जाने को उत्सुक हैं। धर्म के नाम पर वही उत्सुकता है। सेवा के नाम भी वही उत्सुकता है क्योंकि मनुष्य का चित्त महत्वाकांक्षी है। इस चित्त को हम न बदलें तो हम जो भी करेंगे उससे दुनिया में शरारत पैदा होगी। उससे दुनिया में दुख पैदा होगा। उससे दुनिया में परेशानी पैदा होगी। महत्वाकांक्षी अंधा हो जाता है, उसे एक ही धुन रह जाती है।

सेवक भी ऐसा ही कुछ करता रहा है इसलिए दुनिया अच्छी नहीं हो पाई। उसे सेवा करनी है। उसे सेवा में आगे जाना है। उसे कोई फिक्र नहीं है वह क्या कर रहा है। दो सेवकों में नहीं बनती है, कभी दो समाज-सुधारकों में नहीं बनती है। सबको आगे हो जाना है। सेवा और समाज-सुधार भी उनके लिए महत्वाकांक्षा के ही सूत्र हैं। उसमें कोई भेद नहीं है। एक आदमी दूकान खोल रहा है, एक सेवा की दूकान खोल देता है लेकिन महत्वाकांक्षी अगर पीछे है तो तुम जान लेना यह सेवा जहर है। उससे खतरे होंगे। उससे लाभ नहीं होनेवाला है।

करें क्या? चित्त तो महत्वाकांक्षी है ही। इस महत्वाकांक्षा को हम क्या करें? चित्त तो आगे होना चाहता है, लेकिन शायद कोई भूल हो रही है। रवींद्रनाथ ने गीत लिखे। मरने के कोई आठ दिन पहले किसी मित्र ने आकर पूछा कि आपने ये गीत क्यों लिखे? किससे आप आगे होना चाहते थे? रवींद्रनाथ ने कहा कि गीत मैंने इसलिए लिखे कि गीत मेरे आनंद थे। किसी से आगे और पीछे का सवाल न था। गीत मेरी खुशी थी। मेरा हृदय उनको गा कर आनंदित हुआ था। आगे और पीछे होने का सवाल न था। किसी से न आगे होना था, न किसी से पीछे। "वानगाग" एक डच पेंटर था। किसी ने उससे पूछा, "क्यों तुमने ये चित्र बनाए? क्यों किया पेंट? क्यों इतनी मेहनत की? क्यों अपना जीवन लगाया?" वानगाग ने कहा कि और किसी कारण से नहीं। मेरा हृदय चित्रों को बनाकर परमानंद को उपलब्ध हुआ है।

महत्वाकांक्षा दूसरे से प्रतिस्पर्धा है, दूसरे से आगे होना है। लेकिन सच्ची शिक्षा मनुष्य को वह रहस्य सिखाएगी जिससे वह खुद से आगे होने में समर्थ हो जाए, रोज-रोज खुद से आगे, दूसरे से नहीं। कल सांझ को सूर्य जहां मुझे छोड़े, आज सुबह सूर्य उगते मुझे वहां न पाए। मैं अपने भीतर और गहरा चला जाऊं। जिस काम को मैंने चाहा है, उसमें मेरे पैर और दस सीढ़ियां नीचे उतर जाएं, जिस पहाड़ को मैंने चढ़ना चाहा है, मैं और दस कदम आगे चला जाऊं। किसी दूसरे से नहीं, अपने से। कल मैं जहां था, सांझ मुझे आगे पाए, तो मैं जीवित हूं। मुझे अपने को पार कर जाना है। लेकिन अब तक जो शिक्षा दी गई है वह, दूसरे को पार कर जाने की शिक्षा है। इसलिए दुनिया में घृणा है, इसलिए दुनिया में प्रेम नहीं है। एक ऐसी शिक्षा को जन्म देना है, जो व्यक्ति को खुद अपना अतिक्रमण सिखो। आदमी अपने को पार करे, दूसरे को नहीं। दूसरे से क्या प्रयोजन है? दूसरे से क्या संबंध है? मेरी खुशी रोज गहरी होती चली जाए। मेरे जीवन की बगिया में रोज नए-नए फूल खिलते चले जाएं। मैं रोज उस नई ताजी जिंदगी के अनुभव करता चला जाऊं। मुझे कुछ सृजन होता चला जाए। दूसरे के इसका कोई संबंध नहीं। एक-एक व्यक्ति ऐसा जिए जैसे जमीन पर अकेला होता, तो जीता। तभी शायद हम मनुष्य को प्रेम पैदा करने में सफल बना सकेंगे। क्योंकि मनुष्य जब अपने को प्यार करता है तो रोज-रोज उसके पास बांटने को, लुटाने को, बहुत कुछ इकट्ठा हो जाता है, रोज बांटता है फिर भी पाता है। भीतर और इकट्ठा होता चला जा रहा है, क्योंकि वह रोज अपने को प्यार करता जा रहा है, क्योंकि वह रोज अपने जीवन के नए शिखरों को स्पर्श करता जा रहा है। वह नए आकाश को छू रहा है। नए क्षितिज को पार कर रहा है। उसके पास बहुत इकट्ठा हो जाता है। उसे वह क्या करे? उसे वह बांटता है। जो अपने को पार करने मग लगता है उसका जीवन एक बांटना ही हो जाता है। उसकी खुशी फिर बांटना हो जाती है और महत्वाकांक्षी की खुशी होती है संग्रह करने में। सबसे छीन लेना है और अपने पास इकट्ठा कर लेना है। जो व्यक्ति अपने को पार होने में समर्थ होता है उसकी खुशी हो आती है बांट देना, लुटा देना और हमेशा उसे ऐसा लगता है कि जितना मैं दे सकता था उससे मैं कम दे पाया। रवींद्रनाथ के मरने के पहले किसी ने उनको कहा कि तुमने तो इतने गीत गाए, कहते हैं दुनिया में किसी न न गाए। छह हजार गीत, और एक-एक गीत ऐसा जो संगीत में बांधा जा सके। तुम तो महाकवि हो। काई ऐसा नहीं हुआ अब तक, जिसने छह हजार गीत गाए होंगे जो संगीत में बंध जाएं। रवींद्रनाथ की आंखों में आंसू आ गए। पूछनेवाले ने समझा कि वे प्रशंसा से प्रभावित हो गए हैं लेकिन रवींद्रनाथ ने कहा, "मैं रो रहा हूं दुःख से। तुम कहते हो मैंने गीत गाए और इधर मैं, मौत करीब आते देख आंख बंद करके परमात्मा से प्रार्थना करता हूं कि हे परमात्मा, अभी तो मैं केवल साज बिठा पाया था, अभी गीत गाया कहां? अभी तो तैयारी चलती थी। अभी तो मैं सितार ठोक-पीट कर तैयार कर पाया था। अब गाता और यह विदा का क्षण आ गया। मुझे एक मौका और देना कि जो मैंने इकट्ठा किया था उसे बांट सकूं। अभी तो बहुत-कुछ इकट्ठा था। मेरा हृदय एक बादल

की तरह था जिसमें पानी भरा था और धरती प्यासी थी और मेरे विदा का वक्त आ गया और बदल ऐसी चली जाएगी भरी-भरी, और अब लुटा नहीं सकेगी जो उसके पास था। मैं तो उसे फूल की तरह था जो अभी कली था और जिसमें सुगंध बंद थी। अभी मैं खुलता और सुगंध बांटता। लोग कहते हैं मैंने गीत गाए, मैं तो अभी साज बिठा पाया था और यह विदा का वक्त आ गया।" जो आदमी लुटा देगा, जो बांटेगा निरंतर, वह अनुभव करेगा कि उससे ज्यादा उसके भीतर बहुत घनीभूत हो आया था जो और लुट जाना चाहता था। ऐसे व्यक्ति का जीवन प्रेम का जीवन है। आत्मदान प्रेम है। लेकिन बांटेगा कौन? जो छीनने को उत्सुक नहीं है वही। दूसरे को देगा कौन? जो दूसरे से आगे निकल जाने को आतुर नहीं हैं वही, दूसरे के लिए जीएगा कौन? जो दूसरे के जीवन को पीछे नहीं हटा देता। लेकिन हमारा सारा सम्मान तो उनके लिए आता है जो दूसरे को हटा देते हैं। राधाकृष्णन के पहले जन्म दिन सारे मुल्क में शिक्षक दिवस माना गया। मैं भी एक नगर में था। भूल से मुझे भी कोई उस शिक्षक-दिवस पर ले गया। बड़ा गुणगान था इस बात का कि एक शिक्षक राष्टपति हो गया है। मैं बहुत हैरान था। मैंने कहा कि यह शिक्षक का सम्मान नहीं है कि एक शिक्षक राष्टपति हो गया। हां, एक राष्टपति अगर शिक्षक हो जाता तो शिक्षक का सम्मान था। लेकिन शिक्षक राजनीतिक हो जाए, एक पद पर पहुंच जाए, यह तो कोई शिक्षक का सम्मान नहीं है। एक राष्टपति अगर कहे कि मैं छोड़ता हूं यह राष्टपति का पद, और जाकर गांव में शिक्षक हो जाना चाहता हूं, तो उस दिन शिक्षक-दिन मनाना चाहिए। अभी शिक्षक-दिन मनाने का कौन-सा वक्त आ गया है? अभी तो एक शिक्षक ने कहा है कि छोड़ता हूं शिक्षक होना और जाता हूं राजनीति के रास्ते पर, जहां सबको अलग करके मैं आगे निकल जाऊं। यह महत्वकांक्षा की स्वीकृति और सम्मान है। शिक्षक की तो स्वीकृति और सम्मान इसमें नहीं है। दीन-हीन शिक्षक का इससे क्या संबंध? पागल है शिक्षक अगर सोचता हो कि उसका सम्मान है। और गलती में है वह क्योंकि इसका मतलब एक ही होगा कि बाकी शिक्षकों को भी यह नशा चढ़े कि हम भी निकलें आगे और पहुंच जाएं कहीं।

हम आगे निकलने वाले को बहुत सम्मान दे चुके। पीछे जो खड़े हैं उनका भी सम्मान हमारे मन में होना चाहिए। अगर हमारा हृदय प्रेम-पूर्ण हो तो उनके प्रति हमारा सम्मान होगा। जो पीछे खड़े रहे जाते हैं, जिन्हें शायद कोई कभी जानता भी नहीं, पहचानता भी नहीं, कोई अखबार जिनकी खबर नहीं छापते, कोई जिनको फूल-माला नहीं पहनाते, कोई सिंहासन जिनके चरणों के बोझ से बोझिल नहीं होता हैं, वे जो दूर खड़े रह जाते हैं, जहां सबके पद की धूल उड़ती है, वे जो पीछे खड़े रह जाते हैं, जहां सूर्य की रोशनी नहीं पहुंचती है, जहां अंधेरा है, वे जो छाया में छिपे रह जाते हैं, लेकिन प्रतीक्षा करते हैं और प्रेम करते हैं, अपने को चाहते हैं, किस दिन होगा वह सौभाग्य का दिन जब उनका भी सम्मान होगा? जिस दिन उनका सम्मान हमारे मन में होगा उस दिन प्रेम का नगर बस सकेगा। लेकिन उस सम्मान को कौन लाएगा? हम जो महत्त्वाकांक्षा से भरे हैं? हम तो नहीं ला सकेंगे। लेकिन हम भी अगर अंतिम पंक्ति में खड़े होने के आनंद को, दूसरे से प्रतिस्पर्धा छोड़ पुलक को अनुभव कर सकें, हम भी अगर दूसरे की प्रतियोगिता और दूसरे की देने की तुलना को बिदा कर सकें तोशायद हम द्वार बन जाएंगे उनके सम्मान का जो कभी सम्मानित नहीं रहे। लिंकन अमेरिका का राष्टपति हुआ। उसका बाप एक गरीब चमार था। कौन सोचता था कि चमार के घर एक लड़का पैदा होगा, जो मुल्क में आगे खड़ा हो जाएगा? लेकिन अनेक लोगों के मन को चोट पहुंची। एक चमार का लड़का राष्टपति बन जाए! दूसरे जो धनी थे और सौभाग्यशाली घरों में पैदा हुए थे, वे पिछड़ रहे थे। जिस दिन सीनेट में पहला दिन लिंकन बोलने को खड़ा हुआ, तो किसी एक प्रतिस्पर्धी ने, किसी एक महत्वाकांक्षी ने, जिसका क्रोध प्रबल होगा, जो सह नहीं सका होगा, वह खड़ा हो गया। उसने कहा "सुनो लिंकन, यह मत भूल जाना कि तुम राष्टपति हो

गए तो तुम एक चमार के लड़के नहीं हो। नशे में मत आ जाना। तुम्हारा बाप एक चमार था, यह ख्याल रखना।" सारे लोग हंसे, लोगों ने खिल्ली उड़ाई, लोगों को आनंद आया कि चमार का लड़का राष्टपति हो गया था। चमार का लड़का कह कर उन्होंने उसकी प्रतिभा छीन ली। फिर नीचे खड़ा कर दिया। लेकिन लिंकन की आंखें खुशी के आंसुओं से भर गईं। उसने हाथ जोड़ कर कहा कि मेरे स्वर्गीय पिता की तुमने स्मृति दिला दी, यह बहुत अच्छा किया। इस क्षण में मुझे खुद उनकी याद आनी चाहिए थी। लेकिन मैं तुमसे कहूं, मैं उतना अच्छा राष्टपति कभी न हो सकूंगा, जितने अच्छे चमार मेरे बाप थे। वे जितने आनंद से जूते बनाते थे, शायद मैं उतने आनंद से इस पद पर नहीं बैठ सकूंगा। वे अदभुत व्यक्ति थे। मैंने उन्हें जूते बनाते और गीत गाते देखा था। मैंने उन्हें दरिद्रता में और झोपड़े में आनंद से मग्न देखा था। मेरी वह क्षमता नहीं, मेरी वह प्रतिभा नहीं। वे बड़े अदभुत थे, बहुत अलौकिक थे। मैं उनके समक्ष कुछ भी नहीं हूं।

यह जो लिंकन कह सका, एक दरिद्र वृद्ध चमार के बाबत जिसने गीत गा कर जूते बनाए थे और जो आनंदित था और जो अपे जीवन से तृप्त था। उसे उसने स्वीकार किया था। जीवन मग जो उसे मिला था, उसके अनुग्रह से वह भरा था। उसके प्राण निस्पंद थे। वह किसी की प्रतिस्पर्धा में न था। वह किसी की दौड़ में न था। वह अपनी जिंदगी के आनंद में मग्न था।

क्या तुम भी अपने जीवन में आनंद में मग्न होने के ख्याल को जन्म दे सकोगे? क्या प्रतिस्पर्धा को छोड़कर अपने में, निज में, निजता में, कोई खुशी का कारण खोज सकोगे? दूसरे के सुख में नहीं, अपने आनंद में क्या तुम कोई द्वार खोज सकोगे? अगर खोज सको तो एक दुनिया बन सकती है, जो प्रेम की नगरी है। अन्यथा नहीं।

मैंने एक-दो छोटी-सी बातें कहीं। सीमाएं तोड़ देना हैं अपने बाहर, और भीतर प्रतिस्पर्धा और महत्वाकांक्षा छोड़ देनी है। यह मत सोचना कि महत्वाकांक्षा छोड़ देंगे तो विकास रुक जाएगा क्योंकि हमारा सारा विकास यही है कि आगे निकलो। एक बुखार चढ़ा हुआ है, दूसरे से आगे निकलना है। उसमें हम दौड़-धूप कर लेते हैं। अगर हम किसी से आगे निकलने का ख्याल छोड़ देंगे फिर गति कहां होगी? विकास कहां होगा? यह मत सोचना। इस दौड़ में, इस ज्वर में कोई गति नहीं होती है। केवल हम दौड़ते दिखाई पड़ते हैं। गति कोई भी नहीं है इसें। क्योंकि हमारी सारी शक्ति संघर्ष में लीन हो जाती है। सारी शक्ति लग जाती है लड़ने में। लेकिन जो आदमी किसी से लड़ने नहीं जा रहा है उसके प्राण बच जाते हैं, उसके भीतर बच रहा है शक्ति का अथाह सागर। वह शक्ति अपने आप काम शुरू करती है, क्योंकि शक्ति निष्क्रिय नहीं बैठ रह सकती। शक्ति की अपनी सक्रियता है। उस शक्ति की अपनी गति है। एक नदी में, धारा में, पानी है। पर्वत पर बहुत पानी गिरा है और नदी भरी हुई है। तो तुम सोचते हो वह आया हुआ पानी अपना मार्ग नहीं बना लेगा। वह चीर लेगा पहाड़ों को, तोड़ देगा मैदानों को, अपनी राह सागर तक खोज लेगा। मगर, नदी में ताकत होनी चाहिए। नदी किसी से प्रतिस्पर्धा नहीं कर रही है। कोई दूसरी नदी से आगे निकल जाने का सवाल नहीं है। किसी दूसरी नदी का शायद उसे पता भी नहीं है कि कोई और नदी भी जमीन पर है, लेकिन उसकी शक्ति उसे सागर की तरफ ले जाती है।

क्या तुम भी एक ऐसी सरिता बनोगे जिसकी अपनी शक्ति उसे सागर तक ले जाए? जिसकी अपनी आत्मा, ऊर्जा उसे परमात्मा के सागर तक पहुंचा दे। लेकिन हम तो विक्षिप्त और बीमार लोग हैं। हम तो किसी से लड़ कर आगे निकलना चाहते हैं। पर लड़ने में हम वहीं रह जाएंगे, जहां हम थे और खो देंगे वह शक्ति जो कहीं ले जा सकती थी। महावीर का किससे द्वंद्व है? बुद्ध का किससे संघर्ष है? किससे प्रतियोगिता है? किसके मुकाबले वे खड़े हैं? किससे आगे निकलना है? किसी से भी नहीं। कोई नहीं है वहां। अकेले हैं वे। अपनी ऊर्जा से गतिमान, अपनी ही शक्ति से प्रवाहित, अपनी ही शक्ति के वेग से उनके चरण बढ़े चले जा रहे हैं। ऐसा ही जब

कोई बढ़ता है तो उसका जीवन आनंदपूर्ण होता है। जब कली फूल बनती है तो आनंद से भर जाती है, जब बीज वृक्ष बनता है तब आनंद से भर जाता है। उसके आनंद की खबर ही उसके फूल और कली से प्रकट होती है। जब कोई व्यक्ति अपनी आत्म ऊर्जा में जीता है और परिपूर्ण विकसित होता है तब खुशी से उसके प्राण भर जाते हैं। आनंद का लक्षण है बांटना। दुःख सिकुड़ना चाहता है, आनंद बंट जाना चाहता है। तुमने खुद देखा होगा। जब तुम दुखी हो जाओगे, तब एक कोने में बंद हो जाने का मन होगा। कोई न बोले। कोई बात न करे। कोई छोड़े न। अगर बहुत दुःख में होगे तो चाहोगे कि मर ही जाएं, ताकि कोई बीच में न आए। दुःख सिकोड़ता है, और आनंद बंट जाना चाहता है। अगर आनंद फलित होगा, तो द्वार खुल जाएंगे। घर से भाग पड़ोगे तुम उस जगह, जहां सब हैं और वहां जहां बांटने का अवसर है। जिस दिन तुम्हारे प्राण फूल की तरह खिलें, उस दिन तुम्हारा आनंद होगा, उस दिन आनंद बंटेगा। उस दिन वह बंट जाना ही तुम्हारी प्रार्थना है, वही परमात्मा के चरणों में तुम्हारा समर्पण। वे ही फूल हैं जो कोई मनुष्य परमात्मा के पैरों में रख कर अपनी कृतज्ञता का प्रमाण दे सकता है। वे ही फूल हैं तुम्हारे आनंद के, जो तुम बांट दोगे। वही सुगंध है जो तुमसे बिखर जाएगी। और उस दिन तुम्हें लगेगा कि जरूर प्रेम के नगर के तुम बासी हो गए हो।

कभी भगवान करे वह दुनिया बने जो प्रेम की हो। हमें सिर्फ प्रेम के गीत न गाने पड़ें, सारी जिंदगी प्रेम का एक गीत हो जाए।

छठवां प्रवचन

जीवन--एक स्वप्न

कबीर एक दिन कह रहे हैंः आकाश में बादल घिरे हैं। उनका घनघोर नाद सुनाई पड़ रहा है। साधुओं ने आकाश की तरफ देखा। वहां न कोई बादल है, न घनघोर नाद है। उन्होंने बहुत हैरान होकर कबीर की ओर देखा। लेकिन, कबीर की आंखें बंद है, और वे किसी भीतरी आकाश की और किन्हीं उन बादलों की बात कर रहे हैं, जो मनुष्य की अंतरात्मा में घिरते और बरसते हैं। फिर कबीर ने कहाः साधुओ, अमृत की वर्षा हो रही है। फिर उन सारे घिरे लोगों ने बाहर की तरफ देखा। उसी आकाश की तरफ जिससे हम परिचित हैं। लेकिन, वहां कोई वर्षा नहीं हो रही है। अमृत तो दूर, पानी की बूंद भी नहीं पड़ रही है। उन्होंने चौंक कर फिर कबीर की तरफ देखा। लेकिन उनकी आंखें बंद हैं और वही कहे जा रहे हैं कि सुने नहीं, पीओ, अमृत बरस रहा है, खाली मत रह जाओ और वे सब पूछते हैं कबीर से, कहां बरस रहा है? कहां है बादल? कहां है आकाश? कहां है अमृत? सोए हुए आदमी सिर्फ बाहर की दुनिया से परिचित होते हैं। जागे हुए आदमी एक और नई दुनिया को जान पाते हैं जो भीतर की दुनिया है। जो आदमी सोया हुआ है वह आदमी भीतर कभी प्रवेश नहीं कर पाता है। सोए हुए आदमी की पहली पहचान है, उसकी भीतरी दुनिया-जैसी कोई दुनिया नहीं होती, उसका सब बाहर होता है। उसका धन बाहर होता है, उसके मित्र बाहर होते हैं, उसका यश बाहर होता है, यहां तक कि उसका परमात्मा भी बाहर होता है, उसका सब बाहर होता है। उसके भीतर कुछ होता ही नहीं। वह भीतर खाली और रिक्त अंधकार से भरा होता है। जो आदमी सोया है, उसकी जिंदगी एक सपने से ज्यादा नहीं हो सकती। जिंदगी सत्य बनती है जागने से।

मीरा नाच रही है एक गांव की सड़कों पर। गांव के लोग कह रहे हैं पागल है, क्योंकि उनकी समझ में नहीं आता, किसकी मांग पर नाच रही है! मीरा जिसके सामने नाच रही है, वह उसके भीतर है। वह उन्हें दिखाई नहीं पड़ता है। जिन्हें भीतर दिखाई नहीं पड़ता, उन्हें दूसरे के भीतर का तो दिखाई पड़ ही नहीं सकता। गांव के लोग पूछते हैं--पागल हो गई हो? बावरी हो गई हो? मीरा कहती है--तुम भी नाचो। पग में घुंघरू बांधो और नाचो, बड़ा आनंद है। गांव के लोग कहते हैं--पागल हो गई हो? जीवन में सुख ही नहीं मिल रहा है, दुख ही दुख है, आनंद का क्या अर्थ? यह शब्द हम सुनते हैं, पर इसका हमें पता नहीं है। सोए हुए आदमी का दूसरा लक्षण है, वह सुख जानता है, दुःख जानता है, आनंद नहीं जानता है। शायद हम सोचते हैं कि दुख एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। सुख भी एक तनाव है, दुख भी एक तनाव है। इसलिए सुख से भी मन थक जाता है और ऊब जाता है। दुख से तो ऊबता ही है, सुख से भी ऊब जाता है। सुख भी एक उत्तेजना है और दुख भी एक उत्तेजना है, इसलिए दुःख की उत्तेजना में भी मृत्यु हो सकती है, सुख की उत्तेजना में भी मृत्यु हो सकती है। दोनों ही उत्तेजित अवस्थाएं हैं। और जहां उत्तेजना है; वहां आनंद कहां है? आनंद तो वहां है, जहां कोई उत्तेजना नहीं है, जहां कोई तनाव नहीं है, जहां कोई अशांति नहीं है। सोया हुआ आदमी आनंद से अपरिचित होता है और जो आनंद से अपरिचित है, उसकी जिंदगी एक सपना है। जैसे कोई एक सिनेमा-गृह में बैठा हो, वहां पर्दे पर बहुत तरह की तस्वीरें आती हैं, दुख के क्षण आते हैं, दुखद घटनाएं आती हैं सुख के क्षण आते हैं, सुखद घटनाएं आती हैं, पर्दे पर सब आता है। वह जो देखनेवाला बैठा है, उसको छोड़ कर पर्दे पर सब आता है। वह पर्दे के बाहर रह जाता है। सपने की जिंदगी का अर्थ है कि हम जीवन को एक पर्दे की तरह ले रहे हैं और उस पर्दे

पर घटनाएं हैं, सुख की भी हैं, दुःख की भी हैं, बीमारी है, स्वास्थ्य है, यश है, अपयश है, सिर्फ एक आदमी छूट जाता है "मैं"। उस पर्दे पर मैं कभी नहीं आता। इसलिए सोए हुई आदमी का तीसरा लक्षण है, वह स्वयं से अपरिचित होता है। स्वप्न में कोई स्वयं से परिचित हो भी नहीं सकता है। दूसरा लक्षण मैंने कहाः आनंद को उसे कोई पता नहीं होता। मीरा कहती है, आनंद में नाच रही हूं। गांव के लोग पूछते हैं, आनंद क्या है? हम भी पूछेंगे आनंद क्या है? जानते हुए सुख को हम कहेंगे बहुत घना सुख, बहुत बहुत प्रगाढ़, तीव्र। सुख का ही नाम आनंद है या बहुत लंबे सुख का, अनंत सुख का, शाश्वत सुख का जो कभी खत्म न हो, क्योंकि ऐसी कोई उत्तेजना नहीं हो सकती जो शाश्वत रह सके। दुःख भी खत्म हो जाते हैं, सुख भी खत्म हो जाते हैं। लेकिन जिस दिन कोई व्यक्ति ऐसी स्थिति को अनुभव कर लेता है जहां न सुख है, न दुख है, वहां आनंद की यात्रा शुरू होती है। यह जानकर आपको हैरानी होगी, आनंद का उलटा कोई शब्द हमारे पास नहीं है। सुख के विपरीत दुख है, अशांति के विपरीत शांति है। अंधेरे के विपरीत प्रकाश है। जीवन के विपरीत मृत्यु है, लेकिन आनंद के विपरीत हमारे पास कोई शब्द नहीं है। आनंद अकेला शब्द है, जो एक है, जिसका उलटा शब्द हमारे पास नहीं है। उससे उलटी स्थिति होती ही नहीं है। सुख और दुख जहां दोनों ने रह जाएं वहीं आनंद है, लेकिन हम इन दो में ही खोजते रहते हैं घड़ी के पेंडुलम की भांति, सुख से दुख में, दुख से सुख में। सुख की तरफ जो आदमी जा रहा है, वह दुख की तैयारी कर रहा है, यह दिखाई नहीं पड़ता। थोड़ी ही देर में सुख दुःख की तरफ आना शुरू हो जाएगा। हमारा मन सुख और दुख के बीच पेंडुलम की तरह डोलता रहता है। कभी बंद घड़ी देखी है? पेंडुलम कभी बीच में ठहर जाता है, न बाईं तरफ जाता है, न दाईं तरह। अगर किसी दिन हमारा मन भी ऐसा ठहर जाए घड़ी के बंद पेंडुलम की तरह तो जीवन में पहली बार आनंद का बोध शुरू होता है। लेकिन मन चंचल है। वह बायां जागेगा या दायां, वह ठहरेगा नहीं। इसलिए जो मन में जीता है, वह नींद में ही जीएगा, वह कभी जाग नहीं सकता। मन की जिंदगी का नाम है सपना। हम सपने में ही जीते हैं। हम सभी सपने में ही जीते हैं, इसलिए कभी पता नहीं चलता। क्योंकि हम सभी एक से सोए हुए लोग हैं इसलिए कठिनाई नहीं होती है। कठिनाई तो तक कभी होती है, जब कोई एक आदमी सपने से बाहर निकल जाता है। कभी कोई एक जीसस बाहर निकल जाए तो हम सूली पर लटका देते हैं। कभी कोई एक जीसस बाहर निकल जाए तो हम पत्थरों की वर्षा करते हैं। कभी कोई एक सुकरात जाग जाए तो हम जहर पिलाकर मार डालते हैं। सोए हुए लोगों की भीड़ बड़ी नाराज हो जाती है उस आदमी से, जो जाग गया है क्यों? क्योंकि जागा हुआ आदमी हमारी नींद की खबर देने लगता है। जागा हुआ आदमी हमारे लिए तीर की तरह चुभने लगता है कि हम सोए हुए हैं। या तो हम जागें या इसे मिटा दें। खुद जागना कठिन मालूम पड़ता है इसलिए हम उसे ही मिटा डालते हैं।

जीसस को जिस रात सूली लगी, सांझ की खबर मिल गई कि आज रात दुश्मन पकड़ लेंगे। जीसस के मित्रों ने कहा कि भाग क्यों न जाएं, दुश्मन पकड़ने आ रहा है। जीसस ने कहा कि जिसे हम भगा कर बचाएंगे, उसे कितने दिन तक बचाएंगे? वह बच नहीं सकता। उन मित्रों ने कहा कि भगा कर तुम बचाओगे मेरे शरीर को, उसे कितने दिन तक बचा सकोगे? सपने कितनी देर तक खींचे जा सकते हैं? टूट ही जाएंगे। लेकिन वे सोए हुए मित्र न समझे। जीसस ने कहा कि जिसे वे सोच रहे हैं, मार डालेंगे वे भूल मग हैं, उसे वे मार न पाएंगे क्योंकि सत्य की कोई हत्या नहीं हो सकती। सिर्फ सपने ही तोड़े जा सकते हैं, सत्य को तोड़ना असंभव है। इसलिए उन्हें आने दो, जो मारनेवाला है वह मर जाएगा और जो नहीं मरनेवाला है, वह नहीं मरेगा। लेकिन वे मित्र नहीं समझे। सोए हुए आदमी, जागे हुए आदमी की भाषा नहीं समझ पाते हैं। इस मनुष्य-जाति के इतिहास में सबसे बड़ा दुर्भाग्य यही है कि सोए हुए आदमी की भाषा को जागे हुए आदमी तक पहुंचाना मुश्किल, जागे

हुए आदमी की बात को सोए हुए आदमी तक पहुंचाना मुश्किल, वे दो दुनिया में रहने लगते हैं। जीसस को भागते न देखकर कुछ मित्र तो भाग गए अपनी जान बचाने को। लेकिन एक साथी ने कहा कि मैं कभी साथ न छोड़ंगा। जीसस हंसने लगे और उन्होंने कहा कि सुबह होने के पहले, मुर्गा बांग दे इनके पहले तू तीन दफे मुझे छोड़ चुका होगा। उसने कहा, मैं कसम खोता हूं, मैं जिंदगी भर न छोड़ंगा। जीसस हंसने लगे। उन्होंने कहा कि सोए हुए आदमी के वचन का कोई भरोसा नहीं। फिर दुश्मन आ गए और उनको पकड़कर ले जाने लगे। वह साथी भी छिपे-छिपे साथ होने लगा। डरने तो लगा, क्योंकि मौत करीब थी और कहीं फंस न जाए। लेकिन फिर भी उसने सोचा कि अभी मैंने वादा किया है कि मैं छोड़ंगा कभी नहीं। वह साथ चलने लगा। दुश्मन ने देखा कि कोई एक अपरिचित आदमी है हमारे बीच में, तो उन्होंने उसे पकड़ लिया और पूछा कि तुम कौन हो? उसने कहा कि मैं एक अजनबी हूं, मैं दूसरे गांव से आ रहा हूं। उन्होंने पूछा कि तुम जीसस को पहचानते हो? उसने कहा नहीं, बिल्कुल नहीं। कौन जीसस? जीसस सामने ही बंधे हुए थे, घसीटे जा रहे थे। उन्होंने कहाः मित्र अभी सुबह भी नहीं हुई, अभी मुर्गे ने बांग नहीं दी और तू एक बार मुझे छोड़ चुका। असल में सोए हुए आदमी के पास कोई संकल्प नहीं है, काई आत्मा नहीं है। सोए हुए आदमी के पास सपनों का डावांडोल दृश्यपथ, सोए हुए आदमी के पास आकांक्षाओं का एक जाल, वासनाओं का एक फैलाव है। सोए हुए आदमी के पास बदलते हुए सपने हैं लेकिन, कोई स्थिर सत्य नहीं है और हम सब ऐसे ही सोए हुए लोग हैं जन्म से लेकर मृत्यु तक। लेकिन हमें बड़ी भूल होती है। हम रोज सुबह उठ आते हैं तो हम समझते हैं कि हम जाग गए। हम दो तरह के सपने देखते हैं। एक जो आंख बंद करने पर होता है और एक जो आंख खुले होने पर होता है। एक सपना जो हम रात को देखते हैं और एक सपना जो हम दिन में देखते हैं। इस दिन के सपने को हम जागरण कहते हैं, वह बड़ी भूल है। क्यों? इसे क्यों सपना न कहें, इसे क्यों सत्य कहें?

एक राजा का लड़का मर रहा है। मरण-शय्या पर पड़ा है। चिकित्सकों ने कहा कि वे बचेगा नहीं। सम्राट तीन रातों से जाग रहा है, आज चौथी रात है। लड़का बेहोश है, करीब-करीब मरने को पड़ा हुआ है। सम्राट थक गया है तीन दिन से, कोई चार बजे रात उसकी नींद लग गई है। वहीं कुर्सी पर बैठे-बैठे वह सो गया है। नींद लगी और उसे एक सपना आया। उस सपने में उसने देखा कि वह सारी पृथ्वी का सम्राट हो गया है। उसके पास स्वर्ण-महल है और उसके बाहर पुत्र हैं, ऐसे सुंदर, जिनकी कल्पना न की जा सके। ऐसे स्वस्थ, ऐसे बुद्धिमान, ऐसे शक्तिशाली, जिनके सिर्फ सपने ही देखे जो सकते हैं। अब सम्राट बहुत आनंद में है। सब कुछ है उसके पास और तभी अचानक वह बाहर जो बेटा है उसका, दूसरे सपने का, आंख खुली सपने का, वह मर जाता है। पत्नी छाती पीट कर रोती है। सम्राट की आंखें खुल जाती हैं, सपना टूट जाता है, बारह लड़के जो अभी थे, विलीन हो जाते हैं, महल स्वर्ण के खो जाते हैं। पृथ्वी का राज्य हवा हो जाता है। लेकिन वह सम्राट बड़ी मुश्किल में पड़ गया। सामने लड़का मरा हुआ पड़ा है। एक ही लड़का था, लेकिन उसकी आंखें में आंसू नहीं आ रहे हैं। उसकी पत्नी उसे हिलाती है और कहती है कि आप समझे नहीं शायद! बेटा जा चुका है। सम्राट ने कहाः मैं समझ गया। लेकिन मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूं। मैं यह सोच रहा हूं कि अभी मेरे बारह बेटे थे, उनके लिए रोऊं या इस एक बेटे के लिए रोऊं? उसकी पत्नी ने पूछाः कैसे बारह बेटे? उसने कहा कि उनका तुझे पता नहीं क्योंकि, और रानियां थीं, जिनसे वह पैदा हुए थे। उस रानी ने पूछा--कौन-सी रानियां! उस सम्राट ने कहा--तू घबड़ा मत, आंख बंद करके जो दुनिया होती है, उसमें देखे गए बेटे थे। लेकिन मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूं कि सच कौन है! क्योंकि जब मेरी आंख बंद हो गई थी, तो इस बेटे को मैं भूल गया था और तू भी मुझे भूल गई थी और यह महल भी मैं भूल गया था। इनकी मुझे कोई याद न रही थी। मैं एक दूसरी दुनिया में खो गया था। और अब जब

वह दुनिया टूट गई है तो वे सब बेटे खो गए, वे महल, वे रानियां खो गईं। अब तू है, और यह बेटा। सच कौन है? उस रानी ने कहा आप कैसी बातें कर रहे हैं! वह राजा कहने लगा--मैं किसके लिए रोऊं? उस राजा ने चीन में हुए एक बहुत अदभुत फकीर च्वांग्त्से की एक छोटी-सी कहानी अपनी पत्नी से कही। उसने कहा कि मैं कभी नहीं समझ पाया था इस कहानी को, आज समझा हूं। च्वांग्त्से ने कहा है कि मैं एक रात सोया और मैंने सपना देखा कि मैं तितली हो गया हूं, हवाएं हैं, खुला आकाश है, मुक्त तितली उड़ रही है। सुबह च्वांग्त्से उठा और रोने लगा। उसके मित्रों ने पूछा कि क्या हो गया? तो उसने कहा मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया हूं। रात मैंने एक सपना देखा कि मैं तितली हो गया हूं, और फूल-फूल डोल रहा हूं। तो मित्रों ने कहा सपने हम सभी देखते हैं, इसमें परेशानी की क्या बात है? च्वांग्त्से ने कहा कि नहीं, मैं परेशान इसलिए हो गया हूं कि अगर च्वांग्त्से नाम का आदमी रात सपने में तितली हो सकता है तो यह भी हो सकता है, तितली अब सपना देख रही हो कि वह च्वांग्त्से नाम का आदमी हो गई है। जब आदमी तितली बन सकता है सपने में तो कोई तितली सपने में आदमी नहीं बन सकती? च्वांग्त्से फिर कहने लगा; मैं इस मुश्किल में पड़ गया हूं कि मैं च्वांग्त्से हूं, जिसने सपने में तितली का सपना देखा है या मैं हकीकत में एक तितली हूं, जो अब च्वांग्त्से का सपना देख रही है! सम्राट ने कहा कि मैं इस कहानी को कभी नहीं समझ सका था। आज यह पहली दफे मेरे ख्याल में आई है कि जो सपना अभी मैंने आंखें बंद करके देखा था, क्या वह सच था? अगर वह सच था तो फिर यह जो सामने दिखाई पड़ रहा है, कह क्या है? और अगर जो सामने दिखाई पड़ रहा है, वह सच है तो अभी जो आंख बंद करके देखा था वह क्या था? असल में हम दो तरह के सपने देखते हैं। वह सम्राट मुझे मिल जाता तो उससे मैं कहता, कि हम दो तरह के सपने देखते हैं। न तो च्वांग्त्से सपने में तितली बनता है और न तितली च्वांग्त्से बनती है। एक अनजान शक्ति दो तरह के सपने देखती है। वह रात में तितली बन जाती है, दिन में च्वांग्त्से बन जाती है। वह सम्राट रात में देखता है बारह बेटों का सपना, दिन मग देखता है एक बेटे का सपना, लेकिन सब सपने टूट जाते हैं। असल में जो टूट जाता है, उसकी का नाम सपना है। जिसे हम जिंदगी कहते हैं, वह जिंदगी है या एक स्वप्न! अगर वह जिंदगी है तो फिर स्वप्न और जिंदगी में कोई फर्क नहीं है। और अगर वह स्वप्न है तो फिर जिंदगी की तलाश हमें करनी होगी कि फिर जिंदगी कहां है! और इस डर से कि कहीं हमें जिंदगी खोजने का रम न उठाना पड़े, हम सपने को ही जिंदगी मान कर चुपचाप जी लेते हैं और मर जाते हैं। हम असुविधापूर्ण सवाल नहीं उठाना चाहते जो हमारी जिंदगी को मुश्किल में डालें। इसलिए बड़े मजे की बात है, कोई आदमी कभी नहीं पूछता कि मैं कौन हूं क्योंकि यह बहुत ही कठिन सवाल है और जिंदगी को मुश्किल में डाल देने वाला है। और जो जिंदगी हमने सपने के ईंटों से बना ली है उसके गिर जाने का डर है। इसलिए हम ऐसे बुनियादी सवाल नहीं उठते। जिसे हम जिंदगी कहते हैं क्या वह जिंदगी है? वह हमें जिंदगी मालूम पड़ती है क्योंकि हम सब उसको देखते हैं। वह असल में हम सबका सामूहिक सपना है, इसलिए सच्चा मालूम पड़ता है। लेकिन सामूहिक हो जाने से भी कोई सपना सत्य नहीं हो जाता है।

फिल्म के पर्दे पर जा आप देखते हैं, उसमें सच कुछ भी नहीं होता है, सिर्फ प्रकाश की किरणों का जाल होता है। लेकिन वह प्रकाश की किरणों का जाल घड़ी दो घड़ी को भुला देता है कि जो हम देख रहे हैं वह कोरा पर्दा है और उस पर सिवा चित्रों के और कुछ भी नहीं है। हॉल में अगर पांच-छह हजार आदमी बैठे हैं या हजार आदमी बैठे हैं तो उनके लिए एक समान सपना शुरू हो जाता है। क्या जिंदगी पर भी हम इस तरह का सपना नहीं देखते हैं जो सामान्य है, जिसमें हम सब देखनेवाले एक साथ सम्मिलित है? रात में जो सपना हम देखते हैं, वे प्राइवेट है, वह निजी है, उसमें हम दूसरे आदमी को भागीदार नहीं बना सकते हैं। बस इतना ही फर्क है। रात

में जो देखते हैं, वह मैं अकेला देखता हूं इसलिए मैं सुबह आपसे नहीं कह सकता कि जो मैंने देखा वह सच है। क्योंकि मैं आपके लिए गवाही कहां से लाऊं! मैं उसमें अकेला ही मौजूद होता हूं। दिन में जो हम देखते हैं, उसमें हम सब सम्मिलित हैं, सहयोगी हैं। इसलिए गवाही मिल जाएगी। लेकिन गवाही मिलने से क्या झूठ सच हो जाता है? गवाही मिलने से क्या चित्र सत्य बन जाते हैं? सत्य वह है जो सदा एक जैसा है। सत्य वह है जो अपरिचित है। सत्य वह है जो बदलता नहीं है। सत्य वह है जो कभी मरता नहीं है। सत्य वह है जो जैसा था, वैसा ही है, वैसा ही होगा। सत्य का मतलब ही यह है कि जो शाश्वत है, जिसमें कोई रूपांतरण नहीं होता। सत्य का मतलब ही यह है कि जो शाश्वत है, जिसमें कोई रूपांतरण नहीं होता। सपने का मतलब है, जो प्रतिपल बदल रहा है। हर्क्युलिस यूनान में हुआ। उसने कहा है कि आप एक ही नदी में दुबारा नहीं उतर सकते हैं। मुश्किल है एक नदी में दुबारा उतरना। असल में एक बार ही उतरना बहुत मुश्किल है। जब आप नदी में पैर डालते हैं तो जैसे ही पैर आपका पानी को छूता है, वह पानी गया। जब आपका पैर जरा और नीचे गया तब तक दूसरा पानी आ गया है। जरा नीचे गया वह पानी भी गया। एक ही नदी में एक ही बार उतरना मुश्किल है, दुबारा तो उतरना बिल्कुल असंभव है, क्योंकि पानी भागा जा रहा है। लेकिन हमने नाम रख लिया है नदी। कहते हैं गंगा, तो हम सोचते हैं, वही गंगा है जहां कल हम आए थे। गंगा प्रतिपल बहती जा रही है। गंगा एक बहाव है। हम सब भी बहाव हैं। अगर कभी आप कल्पना करे कि आप अपनी मां के पेट में एक छोटे-से अणु थे तो आप विश्वास भी न कर सकेंगे कि आप और एक छोटे से अणु जो नंगी आंखों से देखा भी न जा सकता, जिसके लिए देखने को बड़े यंत्र चाहिए, वह छोटा-सा अणु अगर आपके सामने रख दिया जाए तो आप मानने को राजी न होंगे कि यह मैं हूं। लेकिन आप एक दिन वही थे। फिर एक छोटा-सा बच्चा बने। फिर आप जवान हो गए। फिर आप बूढ़े हो जाएंगे। अगर एक आदमी की जिंदगी भर की तस्वीरें रखी जाएं तो पता चलेगा कि आदमी भी एक बहाव है, जैसे गंगा का बहाव है। अगर हम एक आदमी के दस हजार चित्र खींच सकें, जन्म से लेकर मरने तक, तो हमें कहना पड़ेगा आदमी भी एक नदी है। इसमें कौन-सा चित्र सच्चा है? इसमें कौन-सा चित्र आदमी का अपना है?

जापान में हकीर एक सवाल पूछते हैं कि आपका असली चेहरा कौन सा है? बड़ी मुश्किल है उनका जवाब देना। क्योंकि जब तक आप अपने चेहरे को आईने में बताएं, वह बदल चका है, वह जा चुका है। नदी ही केवल नदी नहीं है, आदमी भी एक नदी है। सुबह आप कुछ होते हैं, सांझ कुछ हो जाते हैं। एक आदमी बुद्ध के पास आया और उनके मुंह पर थूक गया। वह बहुत नाराज था। बुद्ध ने चादर से थूक पोंछ लिया और उस आदमी से कहा--और कुछ कहना है? वह आदमी हतप्रभ हो गया। क्योंकि उसने नहीं सोचा था कि थूके जाने पर बुद्ध पूछेगा कि और कुछ कहना है। बुद्ध ने कहा--घबराओ मत, मेरे ऊपर पाप मत लगाओ कि मैंने तुम्हें घबड़ा दिया। और कुछ कहना है तो कह दो। क्योंकि मैं समझता हूं कि तुम्हें कुछ कहना था, जो तुम शब्दों में न कह सके और तुमने थूक कर कहा है। अब तुम्हें कुछ और कहना हो तो कह दो। बुद्ध का एक भिक्षु पास ही था, वह नाराज हो गया। उसने बुद्ध से कहा, यह बेहद हो गई। वह आदमी थूक रहा है और आप यह क्या कह रहे हैं? हम क्रोध से भर गए हैं। बुद्ध ने कहाः वह आदमी कुछ कह न सको। इसलिए थूक सका। अब तुम भी थूकने की तैयार कर रहे

उस आदमी ने जो किया वही तुम भी करोगे तो फिर तुम और उस आदमी में फर्क क्या है? वह आदमी चला गया। जब वह घर आया तो रात भर सो न सका। दूसरे दिन आकर पैर पर सिर रख दिया और रोने लगा। उसके आंसू बुद्ध के पैरों पर गिर। बुद्ध ने फिर पूछा--और कुछ कहना है? क्योंकि आंसू गिराकर तुमने कुछ तो कह दिया जो तुम कह न सकोगे। अब और कुछ कहना है? उस आदमी ने कहा कि आप भी कैसे आदमी हैं! मैं

कल की माफी मांगने आया हूं। बुद्ध ने कहा--पागल! जिसके ऊपर तुम कल थूक गए थे, वह थूक कब का बह गया और जो थूक गया था वह भी अब कहां है? और थूक कहां है? दोनों ही नहीं हैं। सपने के लिए क्यों परेशान हो रहे हो? सपने का अर्थ है जो प्रतिपल बदलता जा रहा है, जिसे हम क्षण भर ठहरा नहीं सकते। अगर आपका मन सुख में हो तो क्या आप क्षण भर को उस सुख को ठहरा सकते हैं? नहीं ठहरा सकते हैं। जब आप ठहराने की कोशिश कर रहे हैं, तभी बात बदल गई, नदी बह गई है। जब आप किसी के प्रेम में भरे हैं तो क्या आप उस प्रेम को ठहरा सकते हैं? जब आप प्रेम को ठहराने लगे तब जानना कि वह जा चुका है क्योंकि जब वह जा चुका होता है, तभी ठहराने का ख्याल आता है। नहीं, इस जिंदगी में न हमारे मन के भीतर, न हमारे मन के बाहर, कुछ भी ठहराव है।

एक बहुत बड़ा वैज्ञानिक हुआ है एडीसन। उसने अपने एक संस्मरण में लिखा है कि मैंने मनुष्यों की सारी भाषाएं देखें और एक शब्द मुझे झूठ लगता है जो सभी भाषाओं में है। वह बिल्कुल झूठ है। वह शब्द है ठहराव। उसने लिखा है कि ठहरी हुई कोई चीज नहीं है। सब चीजें हो रही हैं। इसलिए बुद्ध कहते थे कि किसी आदमी को यह मत कहना कि वह जवान है, कहना कि वह जवान हो रहा है। किसी आदमी को मत कहना कि वह आदमी बूढ़ा है, कहना कि बूढ़ा हो रहा है। किसी आदमी को मत कहना कि वह क्रोध से भर है, इतना ही कहना कि क्रोध से भर रहा है या खाली हो रहा है। कोई चीज "है" कि स्थिति में नहीं है। कोई चीज ठहरी हुई नहीं है। सब चीजें भागी जा रही हैं और सब चीजें बदलती जा रही हैं, लेकिन सपने में दिखाई नहीं पड़ता। आपने सपने में ख्याल किया होगा कि आप एक घोड़े को देख रहे हैं। वह एक पल में आदमी हो गया। लेकिन सपने में शक भी नहीं आता। यह घोड़ा एकदम से आदमी कैसे हो गया! हां, सुबह जाग कर शक हो सकता है। लेकिन रात सोने में शक नहीं होता कि अभी जिसको हम घोड़ा देख रहे थे वह अचानक आदमी कैसे हो गया! वृक्ष था, वह बोलने लगा, कोई शक नहीं होता। घोड़ा है, आकाश में उड़ने लगा, कोई संदेह पैदा नहीं होता। सपने में सब तरह की बदलाहट स्वीकृत कर ली जाती है। जो जवान था, वह बूढ़ा हो गया, फिर भी हम कहते हैं यह वही हैं। जो बच्चा था वह जवान हो गया है, फिर भी हम कहते हैं, यह वही है। जो प्रेमी था वह पति हो गया है और हम कहते हैं, अब भी यह वही है। सब बदल गया है। जिंदगी एक क्षण को वही नहीं है, जो थी। सब भाग रहा है। शायद हमारी देखने की क्षमता बहुत कम है, इसलिए बदलाहट दिखाई नहीं पड़ती है। या हम एक ही चीज को देखने के इस भांति आदमी हो जाते हैं और बदलाहट इतने आहिस्ता हो रही है कि हमें ख्याल नहीं आता कि बदलाहट हो गई है।

जब मैं कहता हूं कि जिंदगी एक सपना है तो मेरा मतलब है, जिंदगी में कुछ भी ठहरा हुआ नहीं है। जिंदगी एक नदी की तरह बदल रही है, और जहां बदलाहट हो वहां मकान मत बनाना। नदी पर जो मकान बनाएगा वह पागल है। नदी तो बहेगी ही, मकान भी बह जाएगा। लेकिन इस जिंदगी में हम मकान बनाते हैं। मजबूत पत्थरों को बनाते हैं। लेकिन, हमें पता नहीं है कि मजबूत पत्थर भी बहती हुई नदियां हैं। जरा धीरे बह रही हैं। पानी जरा तेजी से बह रहा है। आज तो मजबूत पत्थर है कल वह रेत होगा। आज जो मजबूत पत्थर है, कल वह रेता था। आज जिसकी शिला बहुत मजबूती से आपने रखी है, कल वह राख हो जाएगी। सब चीजें बह रही हैं। बहती हुई इस जिंदगी को घर मत बनाना। धर्म का एक ही सूत्र है और धर्म का एक ही राज है और धर्म की गहरी से गहरी जो खोज है वह यह है कि बहाव पर घर मत बनाना। क्योंकि बहाव के साथ घर भी बह जाएगा और हाथ में कुछ भी नहीं बचेगा। घर वहां बनाना जहां कुछ ठहरा हुआ हो। घर वहां बनाना जहां कोई चीज है, हो रही है वहां घर मत बनाना। अधार्मिक व्यक्ति वे है जो नदियों पर घर बनाते हैं। धार्मिक व्यक्ति

अस्तित्व पर, सत्य पर, घर बनाता है। धार्मिक आदमी बुद्धिमान आदमी है। अधार्मिक आदमी बुद्धिहीन आदमी है। पापी नहीं कह रहा हूं। वह विवेकहीन, सोया हुआ, सपनों में सूबा हुआ जी रहा है। हम जो अपने चारों तरफ देखते हैं, वह बह रहा है, सपने का एक लक्षण है। दूसरा लक्षण कि जो हम देखते हैं, वह वही नहीं है, जो है, हम वही देख लेते हैं, जो हम सपना देखना चाहते हैं।

मजनू को उसके गांव के राजा ने पकड़वा लिया था। गांव भर में चर्चा थी कि वह पागल हो गया है लैला के लिए। उसने बार-बार लैला को देखने की कोशिश की। बड़ी मुश्किल में पड़ा। लैला बहुत साधारण लड़की थी फिर भी मजनू पागल क्यों हो गया। राजा ने मजनू को बुलाया और कहा, तू पागल तो नहीं है! लैला बड़ी साधारण लड़की है। मैंने बहुत सुंदर लड़कियां तेरे लिए बुला कर रखी हैं, उनको देख और जो तुझे पसंद हो उसके साथ तेरा विवाह कर दें लेकिन लैला को भूल जा। लैला बड़ी साधारण लड़की है। मजनू हंसने लगा। उसने राजा से कहा कि शायद आपको पता नहीं, लैला को देखने के लिए मजनू की आंख चाहिए। मेरी आंख है आपके पास? राजा ने कहा--तेरी आंख मेरे पास कैसे हो सकती है! तो उसने कहाः फिर छोड़िए ख्याल, आप लैला को न देख पाएंगे। लैला को मजनू देख सकता है। मजनू की आंख ही लैला को देख सकती है। मुझे तमाम लैला दिखाई पड़ेगी। और मजनू ठीक कह रहा है। वह एक बड़े सत्य की ओर इंगित कर रहा है, शायद उसे पता नहीं ऐसे सत्य का। हम वही देख लेते हैं, जो हम देखना चाहते हैं। यहां जो बाहर है या भीतर, वह हम नहीं देखते हैं। जो हम देखना चाहते हैं उसे हम आरोपित कर लेते हैं। सपने का मतलब है एक आरोपण, इंपोजीशन। किसी को आप मित्र आरोपित कर रहे हैं। बड़ा आश्चर्य! जो कल तक मित्र था, वह आज शत्रु हो गया है। जो शत्रु था, वह आज मित्र हो गया है। शायद जो था वह आप देख नहीं पाए थे। आपने कुछ मान रखा था। हम सब मानकर जी रहे हैं। सुनी है मैंने एक कहानी। रामदास हजारों-हजारों साल बाद राम की कथा लिखते थे। राम की कथा लिख रहे हैं हजारों साल बाद। यह खबर हनुमान पर पहुंच गई है। और यह खबर ऐसी पहुंची है कि लोगों ने कहा कि, रामदास जैसी राम की कथा लिख रहे हैं, ऐसी कभी नहीं लिखी गई है। और रोज लिखते हैं और सुना देते हैं। हजारों लोग इकट्ठे होते हैं। तो हनुमान भी छिपकर वहां जाने लगे। एक दिन गए तो उन्हें बहुत रस मिला। सच में ही अदभुत ढंग से वे कहानी कह रहे थे। हनुमान को भी रस मिला, जो कहानी का एक साक्षी था। फिर वह घटना आती है कहानी में, जबकि हनुमान सीता को खोजते हुए अशोक वाटिका में गए। तो रामदास ने कहा कि जब हनुमान अशोक वाटिका में गए तो वहां सफेद फूल चांदनी रात में पूरे बगीचे में ढके हुए थे। पूरा बगीचा ढका हुआ था। हनुमान के बरदाश्त के बाहर हो गया। उन्होंने खड़े होकर कहा कि माफ कीजिए शायद आपसे कुछ भूल हो गई, फूल लाल रंग के थे, बदलाहट कर लें। लेकिन रामदास ने कह, नासमझ चुपचाप बैठ, फूल सफेद थे। हनुमान तो छिपे हुए वेश में थे, बड़ी मुश्किल हो गई, लेकिन क्रोध भी चढ़ गया। उन्होंने अपना असली रूप प्रकट कर कहा कि शायद आपको पता न हो, मैं खुद हनुमान हूं, मैं खुद गया था। अब आप देख लें मुझे और सुधार कर लें। रामदास ने कहा, होगे तुम हनुमान लेकिन सुधार नहीं होगा। फूल सफेद ही थे। झगड़ा बहुत उपद्रव का हो गया। हजारों साल बाद जो आदमी कहानी लिखता है, वह यह कह रहा है उस आदमी से जो गया था। तो कथा है कि हनुमान उन्हें पकड़ कर राम के पास ले गए कि इसके सिवा कोई निपटारा नहीं है। हनुमान ने राम से कहा कि देखते हो इस आदमी की हठ! यह आदमी कहता है कि फूल सफेद थे और मैं गया था अशोक वाटिका में। राम ने कहा, कुछ मत कहो हनुमान, फूल सफेद ही थे लेकिन तुम क्रोध से भरे थे, आंखें खून से भरी थीं इसलिए लाल दिखाई पड़े होंगे। सफेद फूल भी लाल दिखाई पड़ सकते हैं। असल में जो हमें दिखाई पड़ता है, वह वही नहीं होता है जो है। वह होता है जो हमारी आंखें प्रोजेक्ट करती हैं, जो हमारी आंखें इंपोज करती हैं,

जो हमारी आंखें प्रोजेक्ट करती हैं, जो हमारी आंखें इंपोज करती हैं, जो हमारी आंखें आरोपित करती हैं। एक जर्मन कवि हुआ है हीर। जंगल में भटक गया था, भूल गया रास्ता। बहुत कविताएं लिखी हैं। उसने चांद में प्रेयसी को अनेक बार देखा है। पूर्णिमा की रात आ गई थी। तीन दिन से भटक रहा है। पूर्णिमा की रात है, सुनसान जंगल है। लेकिन उस चांद में उसे प्रेयसी की तस्वीर नहीं दिखाई पड़ती। बल्कि एक डबल रोटी तैरती हुई दिखाई पड़ती है। तीन दिन से भूखा है। भूखे आदमी को चांद में कहीं प्रेयसी दिखाई पड़ेगी? बिल्कुल नहीं दिखाई पड़ेगी। चांद में स्त्री दिखाई पड़ने के लिए पेट भरा होना पहली शर्त है। बल्कि थोड़ा ज्यादा पेट भरा होना जरूरी है। भूखे आदमी को रोटी दिखाई पड़ती है, आकाश में तैरती हुई। हीर ने लिखा है "मैं बड़ा हैरान हुआ। अब तक किसी कवि को यह क्यों नहीं सूझा कि चांद नहीं है आकाश में, एक सफेद रोटी तैर रही है। यह भूखे आदमी का इंपोजीशन है, आरोपण है। असल में चांद हमने देखा नहीं, किसी ने भी नहीं देखा। हम सब को जो देखना है, वह देख लेते हैं। किसी की प्रेयसी खो गई है, किसी की पत्नी खो गई है, किसी का बेटा मर गया है। जब वह चांद की तरफ देखता है तो बड़ा उदास मालूम पड़ता है। उसी रात, गांव में, उसी के मकान के दूसरी तरफ कोई अपने प्रेमी के पास बैठा है, किसी का खजाना उसे मिल गया है। उसे चांद बहुत आनंदित और हंसता हुआ मालूम पड़ता है। चांद एक है। चांद से तो कोई पूछने नहीं जाता कि तुम उदास हो कि प्रसन्न हो। अपनी प्रसन्नता और अपनी उदासी हम उस पर आरोपित कर देते हैं। हम चौबीस घंटे अपने चारों और प्रोजेक्शन कर रहे हैं। प्रोजेक्शन मशीन होती है सिनेमा के पीछे, जिससे पर्दे पर चित्र फेंके जाते हैं। हर आदमी एक-एक प्रोजेक्टर है; जो जिंदगी भर चारों तरफ से चित्र फेंक रहा है और अपना-अपना चित्र देख रहा है।

मेरे एक प्रोफेसर थे। उनसे मैंने यह बात कही एक दिन। मैंने उनसे कहा कि हम वही देख लेते हैं, बल्कि वही हो जाता है जो हमारी कामना प्रोजेक्ट करती है, जो हमारी कामना प्रक्षेप करती है। उन्होंने कहा कि नहीं ऐसा नहीं है। ऐसा कैसे हो सकता है? पंद्रह दिन बाद मैं उनके घर गया और मैंने सुबह ही जाकर उनकी पत्नी से पूछा कि आपके श्रीमान की तबीयत तो ठीक है न? उन्होंने कहा तबीयत बिल्कुल ठीक है। कोई गड़बड़ नहीं। आप कैसे पूछने आए? मैंने कहा कि मैं कुछ प्रयोग कर रहा हूं। कृपा करके मेरी तरफ से सुबह जब वे उठे तो इतना कह दीजिएगा उनसे कि क्या बात है आपकी तबीयत कुछ खराब मालूम होती है? आंखें लाल हैं! शरीर कुछ कुम्हलाया मालूम पड़ता है। उनकी पत्नी ने कहाः लेकिन उनकी तबीयत बिल्कुल ठीक है। मैंने कहाः यह सवाल नहीं है, आप उतना मेरी तरफ से दोहरा देंगी, मैं कुछ प्रयोग कर रहा हूं। यह कागज दे जा रहा हूं। वे जो कहें, ठीक वे ही शब्द इस कागज पर लिख दीजिएगा। पड़ोस में एक पोस्ट मास्टर रहते थे, उनसे मैंने कहा कि सुबह आप भी जब वे सज्जन निकलें तो उनसे नमस्कार करके यही पूछ लेना कि क्या बात है, तबीयत कुछ खराब है आपकी? चेहरा पीला-पीला मालूम पड़ता है और वे जो भी कहें लिख लेंगे। नंबर तीन पर एक और प्रोफेसर रहते थे, उनके घर भी मैं कह आया, नंबर चर पर भी कह आया। नंबर पांच वाले आदमी को मैंने कहा कि जब वे यहां से निकलें तो आप उनसे यह पूछ लेना कि आपके हाथ पैर डगमगाते--से मालूम पड़ते हैं, क्या बात है? मैं कोई बीस लोगों को कागज दे आया। पत्नी ने उनसे सुबह उठते ही पूछा कि क्या बात है, आंखें लाल मालूम होती हैं, चेहरा उदास मालूम होता है, तबीयत तो ठीक है न? उन्होंने कहाः तबीयत बिल्कुल ठीक है, कोई गड़बड़ी नहीं है। पड़ोस के पोस्ट मास्टर ने जब उनसे पूछा कि आपकी तबीयत खराब मालूम होती है, तो उन्होंने कहा, नहीं नहीं, तबीयत को खराब नहीं, जरा रात नींद ठीक नहीं हुई। जब तीसरे आदमी ने उनसे पूछा कि क्या बात है आपका स्वास्थ्य कुछ! ... वह इतना ही कह पाया था कि उन्होंने कहाः रात से ही कुछ हरारत सी मालूम पड़ती है। आठवें आदमी ने उनसे पूछा ही नहीं कि आपकी तबीयत कैसी है। उन्होंने खुद ही कहा कि

आज युनिवर्सिटी जाने की हिम्मत नहीं है। बुखार है रात से। यदि आप जा रहे हों तो मैं आपकी कार में चलूं, क्योंकि आज मैं पैदल न जा सकूंगा। वे कार में ही बैठ गए। दरवाजे पर जो डिपार्टमेंट का चपरासी था, उसने उनको सम्हाला। वे बराबर कंपती हुई हालत में थे। और जब अंदर डिपार्टमेंट से मैंने उनसे कहा कि क्या हो गया आपको, तबीयत बहुत खराब है? तो एक दम बैठकर आंखें उन्होंने बंद कर लीं, जवाब ही नहीं दिया। थोड़ी देर बाद बोले कि तबीयत मेरी बहुत खराब है, घर पर खबर कर दो, कोई आ जाए और मुझे ले जाए। शाम को जब मैं उनके घर गया तो थर्मामीटर लेकर गया था। उनको एक सौ डिग्री बुखार था। उन बीस पुर्जों को भी साथ ले गया था। थर्मामीटर लगा कर बुखार नापकर मैंने बीसों पुर्जे उनके हाथ में दे दिए और कहाः कृपा कर पहले पुर्जे से बीस पर पढ़ जाएं। यह सुबह के आपके दिए हुए जवाब हैं। यह बुखार आपका सपना है कि सच है? यह बुखार प्रोजेक्शन हो गया। यह बुखार उन्होंने अपने पर आरोपित कर लिया। हम अपने पर भी आरोपित करते हैं। "जो हैं" वह हमें दिखाई नहीं पड़ रहा है, न भीतर है, न बाहर। जो नहीं है, उसे हम थोप रहे हैं और देख रहे हैं। सम्राट एक तरह के सपने देखता है, भिखारी दूसरे तरह के देखता है। जीता हुआ एक तरह का देखता है, हारा हुआ दूसरी तरह का देखता है, लेकिन हम सब सपने ही देखते हैं। सपने के बाहर तो वही आदमी हो सकता है, जो अपनी तरफ से सत्य के ऊपर, यथार्थ के ऊपर, कुछ भी थोपने से इंकार कर दे, जो कहे कि मैं अपनी आंख से तो कोई भी चित्र फेंकूंगा। जो अपनी आंख शून्य कर ले, खाली कर ले, जो निपट खाली हो जाए और जिसका प्रोजेक्टर भीतर से बंद हो जाए और जो कहे कि मैं कोई विचार के माध्यम से जगत को न देखूंगा, न निर्विचार के माध्यम से देखूंगा, तो सत्य को पा सकता है। और जिस दिन सत्य दिखाई पड़ता है उस दिन पता चलता है कि हम कैसे सपने में जी रहे थे। असल में जब तक सपने न टूटें तब तक पता ही नहीं चलता कि हम सपने में थे। कभी आपको नींद में पता चला है कि आप नींद में हैं? यह सुबह में आपको पता चलता है, जब नींद टूट जाती है। जब तक आप जानते मैं तब तक आपको पता रहता है कि मैं जगा हूं, आपको कभी पता नहीं चलता है कि कब आप सो गए। आपको रात भर पता नहीं चलता कि मैं सोया था। नींद टूटे तभी पता चलता है। हम सब सपने में हैं, वह हमें तभी पता चल सकता है, जब सपना टूटता है। लेकिन अगर कोई भी हमसे कहे कि हम सब सोए हुए लोग हैं तो चित्त नाराज होता है, क्रोध आता है।

भीखण नामक एक फकीर एक गांव में रुके हैं। सारा गांव उनको सुनने आया है। गांव को जो धनपति है, वह सामने ही बैठा है। भीखण ने बोलना शुरू किया है। जैसा कि धार्मिक सभाओं में होता है, अधिक लोग सो जाते है। वह सामने बैठा हुआ धनपति भी सो गया है। और भी बहुत लोग सो गए होंगे। असल में कुछ डाक्टर तो यह कहते हैं कि जिनको नींद न आती हो, उनको धार्मिक सभा में चला जाना चाहिए। वहां नींद आ ही जाती है। दिन भर के थके-मांदे लोग, जिन बातों में उनकी कोई रुचि नहीं, जब उनको जानी चाहिए। पहले ऊब पैदा हो जानी चाहिए तो नींद आ जाती है। इसलिए छोटे बच्चे को सुलाने की मां जो तरकीब लाती हैं, वह बड़ी खतरनाक है। वह उससे कहती है, राजा बेटा सो जा, सो जा, मुन्ना बेटा सो जा, दोहराती ही चली जाती है। ऐसे ही बकवास दोहराती है तो राजा बेटा भाग भी नहीं सकता और सिर पकने लगता है चित्त ऊब जाता है। इसको सुनने की अब तबीयत नहीं होती कि अब यह और बकवास सुनी जाए तो राजा बेटा को सोना पड़ता है। राजा बेटा के बाप के साथ भी यह प्रयोग किया जाए, वे भी सो जाएंगे। इसलिए जो लोग बैठ कर राम नाम का जाप जपते रहते हैं, वे झपकी लेते हैं। एक ही शब्द को कोई दोहराएगा तो ऊब पैदा होती है, ऊब से नींद आ जाती है। सामने बैठा हुआ धनपति भी सो गया है। भीखण के रहने और संन्यासी भी उस गांव में आए थे, तब भी वह धनपति सोता था। लेकिन, वह दूसरे संन्यासी धनपति से कहते थे कि आप बड़े तल्लीन होकर, ध्यानमग्न होकर

सुनते हैं। और वह धनपति भी मानता था और शान से कहता था कि मैं ध्यानमग्न होकर सुनता हूं। लेकिन वह भीखण अजीब आदमी हैं। इन्होंने उसको रोका और कहा कि सो रहे हो क्या? उसने जल्दी से आंख खोली। उसने कहा कि नहीं, सो नहीं रहा हूं, मैं तो ध्यानमग्न होकर सुन रहा हूं। भीखण ने फिर बोला शुरू कर दिया। उस आदमी को फिर नींद लग गई। भीखण ने फिर रोका और कहा, सो रहे हो क्या? उस आदमी ने कहा, नहीं, आप भी कैसे आदमी हैं? मैं सोता नहीं, यह मेरी आदत है, ध्यानमग्न होकर मैं सुनता हूं। भीखण ने फिर बोलना शुरू कर दिया, वह आदमी फिर सो गया, लेकिन थोड़ी देर बाद भीखण ने फिर जोर से कहाः जीते हो क्या? उस आदमी ने कहाः नहीं, नहीं, कौन कहता है? मैं तो बराबर सुन रहा हूं। आप कैसे आदमी हैं कि बार-बार वही बात दोहराते हैं। भीखण ने कहाः इस बार तो तुम फंस गए हो क्योंकि, इस बार मैंने नहीं कहा कि सोते हो क्या, मैंने पूछा हैः जीते हो क्या? और अगर ध्यानमग्न होकर सुन रहे होते तो तुमने जरूर सुन लिया होता। नहीं, सुन नहीं रहे हो। लेकिन तुम्हारा उत्तर ठीक है। जो सो रहा है, वह जी भी नहीं रहा है। जो सो रहा है, वह एक अर्थ में मरा ही हुआ है। हम एक अर्थ में मुर्दा हैं, बहुत गहरे अर्थ में। क्योंकि हम जीवन को तो जान ही नहीं पाए। जीवन को नहीं जान पाए इसलिए तो हम पूछते हैं, परमात्मा कहां है? अगर हम जीवन को जान लेते तो हम यह कभी न पूछते कि परमात्मा कहां है क्योंकि, परमात्मा जीवन का दूसरा नाम है, इसलिए तो हम पूछते हैं, मोक्ष कहां है? अगर हम जीवन को जान लेते तो कभी न पूछते मोक्ष कहां है क्योंकि जीवन परम मुक्ति है। जीवन को नहीं जान पाए इसलिए तो हम मौत से डरते हैं और घबराते हैं और पूछते हैं कि मर तो न जाएंगे? आत्मा अमर है न? अगर हम जीवन को जान लेते तो हम पाते कि कुछ मरता नहीं है। जो है, वह सदा है। मृत्यु एक असत्य हो जाता है। लेकिन जीवन का हमें कोई पता नहीं है, इसलिए परमात्मा का कोई पता नहीं। मुक्ति का कोई पता नहीं, इसलिए मृत्यु असत्य है, इसका कोई पता नहीं। मुक्ति का कोई पता नहीं, इसलिए मृत्यु असत्य है, इसका कोई पता नहीं है। अगर हम जीवन को जान लेते तो हम कभी नहीं पूछते कि आनंद कहां है? क्योंकि जहां जीवन है, वहां आनंद है। लेकिन उसका हमें कोई पता नहीं है और पता होगा भी नहीं क्योंकि जीवन जागने से दिखाई पड़ता है, सोने से नहीं दिखाई पड़ता। सोए-सोए कैसे पता चल सकता है कि जीवन क्या है? लेकिन हमने एक तरकीब ईजाद की है, इसलिए इस नींद को मिटाना मुश्किल हो रहा है। और वह यह है कि हम इसको नींद कहते ही नहीं, हम इसको जागना कहते है। सुबह जब हम आंख खोल लेते हैं तो वह जो आदमी हमारे भीतर भर सोया रहा था, हम सोचते हैं, जाग गया। जागता नहीं, सिर्फ रात में शरीर थक गया था और आंख बंद हो गई थी। भीतर का आदमी वही है, जो रात सोया था। उसमें कोई फर्क नहीं पड़ता है। सुबह जब आंख खुलती है तो सिर्फ शरीर ताजा हो गया, लेकिन भीतर का आदमी वही है जो रात में सोया था। आप सोए हुए ही होते हैं, पर जागे हुए समझते हैं। आपके भीतर, आपकी चेतना में, नींद में और जागने में कोई भी फर्क नहीं है। आप तो सोए ही रहते हैं। लेकिन आंख के खुली और बंद होने से, शरीर के थक पर गिर जाने से, वह भ्रांति पैदा होती है कि रात में हम सोए थे और दिन में हम जाग गए हैं। हम चौबीस घंटे सोए हुए हैं।

बुद्ध को जब ज्ञान हुआ तो किसी ने उनको पूछा कि आपको मिला क्या है? तो उन्होंने कहाः जागना मिला है। और उनसे पूछा कि आपने खोया क्या है? उन्होंने कहाः सोना खोया है। कृष्ण ने तो गीता में कहा है कि जब सब सोते हैं, तब भी वह जो योगी है, जागता है। लेकिन उलटा, जो योगी नहीं है, जब हम समझते हैं कि वह जाग रहा है, तभी सोता है। जो योगी है, वह जब हम सोचते हैं सो रहा है, तब भी जागता है। बुद्ध के पास आनंद कोई चालीस साल तक रहा। आनंद बुद्ध का बड़ा चचेरा भाई था। लेकिन दीक्षा लेने के बाद तो बड़ा भाई नहीं रह जाएगा। जब तक दीक्षा नहीं ली थी तब तक वह बुद्ध का बड़ा भाई था। उसने बुद्ध से कहा कि मैं

दीक्षा लेने आया हूं। दीक्षा लेने के पहले तुम मेरे छोटे भाई हो, बड़े भाई की हैसियत से मैं कुछ वचन तुम से ले लेना चाहता हूं। क्योंकि दीक्षा ले लेने के बाद तो फिर मैं तुमसे कुछ नहीं ले सकूंगा, फिर तो तुम्हारे आदेश मुझे मालूम पड़ेंगे। लेकिन अभी मैं तुम्हें दो-तीन आदेश देता हूं। पहला आदेश यह है कि मैं सदा तुम्हारे साथ रहूंगा। दीक्षा के बाद तुम मुझे कहीं और न भेज सकोगे। मैं तुम्हारे साथ-साथ ही सोऊंगा। चालीस साल तक वह बुद्ध के साथ ही सोता था। उसे यह देख कर बड़ी हैरानी हुई कि बुद्ध सुबह उसी करवट उठते हैं, जिस करवट रात में सोते हैं। उसने कुछ दिनों तक देखने के बाद बुद्ध से कहा कि क्या सोने में भी आप हिसाब रखते हैं? हाथ नहीं हिलते, करवट नहीं बदलते। सोते हैं कि लेटे रहते हैं? बुद्ध ने कहाः सोता तो हूं लेकिन, शरीर ही सोता है। अब मेरे सोने का कोई उपाय नहीं। अब मैं जाग गया हूं। भीतर मैं जागा ही रहता हूं। भीतर तो सोने का अब कोई उपाय नहीं रहा। हम बाहर के जागने और सोने को ही सब समझ रहे हैं, भीतर का सोना और जागना हमारे ख्याल में नहीं है। भीतर हम सोए ही हुए हैं। आनंद ने कहाः मैं कुछ समझा नहीं, यह भीतर का सोना क्या बात है? दूसरे दिन सुबह बुद्ध को सुनने जब सारे लोग बैठे हैं, एक आदमी सामने ही बैठा है, वह अपने पैर के अंगूठे को हिला रहा है। बुद्ध ने अपना वचन बंद करके कहा कि मित्र, यह तुम क्या कर रहे हो, पैर का अंगूठा क्यों हिला रहे हो? उस आदमी ने जैसे ही सुना, पैर का अंगूठा बंद कर उसने कहाः मुझे पता नहीं था। तो बुद्ध ने कहाः तुम्हारा अंगूठा और तुम्हें पता न हो, जागे हुए हो या सोए हुए हो। आनंद से कहाः देखो यह आदमी जगा हुआ मालूम पड़ रहा है लेकिन सोया हुआ है, यह कहता है, मेरा अंगूठा हिल रहा था और मुझे पता नहीं क्यों हिल रहा था। जब आपने क्रोध किया है, तब क्या आप जागे हुए होते हैं? अगर जागे हुए होते तो आप क्रोध करते? लेकिन क्रोध के बाद हम खुद ही कहते हैं कि पता नहीं कैसे हो गया! क्रोध के बाद हम कहते हैं, मेरे बावजूद हो गया है। मैं तो करना ही नहीं चाहता था। हजारों हत्यारों ने अदालतों में यह गवाही दी है कि हम हत्या नहीं करना चाहते थे। जब क्रोध में ही आप नहीं रह जाते तो हत्या करने में आप कहां रह जाएंगे? नींद में हत्याएं हो रही हैं। नींद में क्रोध हो रहा है, नींद में प्रेम हो रहा है। और अगर हम बहुत बारीकी से देखें तो नींद में हम रास्तों पर चल रहे हैं, दूकानों पर काम कर रहे हैं, दफ्तरों में बैठे हुए हैं। कुछ लोग होते हैं जो रात सपने में उठकर कुछ काम करते हैं। यह एक बीमारी है।

न्यूयार्क में एक आदमी था। वह अपनी छत पर से नींद में कूद जाता था। फासला लंबा था, कोई नौ फुट का था। जागने पर वह आदमी छह फीट भी नहीं कूद सकता था। और चालीस मंजिल ऊंचे मकान पर से तो कूद ही नहीं सकता, दूसरे के मकान पर, बीच में खड्डा था इतना बड़ा। यह खबर गांव में फैल गई। तो रात वहां कुछ लोग देखने को इकट्ठे हो गए। कोई एक बजे रात वह आदमी नींद में अपनी छत पर पहुंच गया और उसने छलांग लगाई। पहले दिन तो लोग देखकर दंग रह गए। वह छलांग लगाकर उस तरफ चला गया। वह वापिस छलांग लगाकर जब आ रहा था, तब लोगों ने आवाज कर दी, तब उसकी नींद टूट गई। आंख खुल गई, उसने देखा मैं यह क्या कर रहा हूं। वह वहीं गिर पड़ा और समाप्त हो गया। सैकड़ों लोग ऐसे हैं, आपके गांव में भी दो-चार लोग मिल सकते हैं, जो रात सोते में कुछ काम करते हैं। मेडम क्यूरी ने जो अविष्कार किया वह नींद में किया। रात सोते में उठकर कागज पर उत्तर लिखा, जिसको वह जागते में कई बार कर चुकी थी और उत्तर नहीं आया था। सुबह वह हैरान हो गई। जिसको उससे नोबल प्राइज मिली, वह उसको नहीं मिलनी चाहिए, नींद को मिलनी चाहिए। सुबह उठकर उसको खुद ही भरोसा न होता था कि यह किसने लिखा, लेकिन हस्ताक्षर उसी के थे और रात उसके कमरे में कोई नहीं था। नींद में, रात में लोग उठकर कुछ करते हैं और दिन में तो हम सारे लोग उठकर कर रहे हैं। सुबह उठते हैं और वह नींद जिसको हमने रात में नींद समझी थी, टूट जाती है। वह

नींद, जो धर्म की दृष्टि से नींद है, जारी रहती है। दो तलों पर हमारी नींद है। एक शरीर के तल पर और एक भीतरी आध्यात्मिक तल पर। वहां अध्यात्म के तल पर तो मूर्च्छा जारी रहती है, शरीर के तल पर नींद टूट जाती है। इसलिए तो इस दुनिया में इतने झगड़े हैं। ये सोए हुए आदमियों के झगड़े हैं। इतने युद्ध हैं, ये सोए हुए आदमियों के युद्ध हैं। इतना वैमनस्य है, इतनी ईर्ष्या है, इतनी हिंसा है, ये सोए हुए आदमी के हैं। अगर आदमी भीतर से नहीं जगाया जा सकता तो बहुत खतरा है। क्योंकि सोए हुए आदमी ने नींद में एटम बम तक ईजाद कर लिया है। अब कोई एक सोया हुआ आदमी सारे सोए हुए आदमियों को समाप्त कर सकता है। अब खतरा बहुत है। पृथ्वी पर पहले तो एक दो आदमी भी जागते रहे तो चला। अब तो पूरी मनुष्यता का बहुत बड़ा हिस्सा जागेगा तो मनुष्यता बच सकती है अन्यथा नहीं बच सकती। इसलिए धर्म जितना आज जरूरी है, इतना जरूरी कभी भी नहीं था। सारी मनुष्यता समाप्त हो सकती है। कोई भी न बचे, ऐसा हो सकता है। आईन्स्टीन से मरने के पहले कोई पूछ रहा था कि तीसरे महायुद्ध में क्या होगा? तो आईन्स्टीन ने कहाः तीसरे के बाबत कुछ भी कहना असंभव है। लेकिन, अगर चौथे के संबंध में कुछ जानना चाहो तो मैं कह सकता हूं। उस आदमी ने कहा कि जब तीसरे के बाबत भी आप नहीं बता सकते तो चौथे के बाबत क्या बताएंगे? आईन्स्टीन ने कहाः एक बात पक्की कह सकता हूं कि चौथा महायुद्ध कभी नहीं होगा। क्योंकि आदमी चाहिए युद्ध के लिए? चौथे के लिए कोई बचनेवाला नहीं है। इतना विराट निद्रित आदमी ने इंतजाम कर रखा है! कोई पचास हजार अणु बम सारी पृथ्वी पर इकट्ठे कर रखे हैं। यह इस पृथ्वी को मिटाने के लिए जरूरत से सात गुने ज्यादा हैं। जितने आदमी हैं, इनको हमें अगर एक-एक को सात-सात बार मारना हो तो हम मार सकते हैं। हालांकि एक ही दफे में आदमी मर जाता है, लेकिन इंतजाम पक्का किया है कि कोई बच जाए तो दुबारा मारें, तिबारा मारें, सात-सात बार एक-एक आदमी को हम मार सकते हैं। यह पृथ्वी बहुत छोटी है। इस तरह की सात पृथ्वी हों तो सबको हम भस्मीभूत कर सकते हैं। सोए हुए आदमी ने नींद में भी बहुत कुछ उपद्रव खड़े कर लिए हैं। सोया हुआ आदमी कुछ भी कर सकता है क्योंकि वह उत्तरदायी नहीं है। जब वह कर चुकेगा, वह कहेगा कि मुझे क्या पता यह क्या हुआ! हिटलर से आप पूछ सकते हैं कि तुमने यह क्या किया? पांच करोड़ आदमी हिटलर की वजह से मरे। लेकिन हिटलर को आखिरी वक्त तक यह ख्याल नहीं था कि वह जिम्मेदार है। और जब बर्लिन पर बंब गिरने लगे और हिटलर अपने छिपने के स्थान में था, तब भी वह रेडिओ पर भाषण देता रहा कि हिटलर पागल था। पागल कहना ठीक नहीं है। मैं इतना ही कहता हूं कि वह गहरी नींद में सोया हुआ आदमी था। और हम भी गहरी नींद में उसी तरह के सोए हुए आदमी हैं। हम सब कम-ज्यादा मात्रा में सोए हुए लोग हैं। नहीं तो हिटलर इतने लोगों को इतने बड़े उपद्रव में संलग्न न कर पाता। एक पागल आदमी एक बुद्धिमान से बुद्धिमान मुल्क को इस तरह पागल कर सकता है तो इसका मतलब क्या होता है? हिटलर अगर अकेला पागल है तो पूरे जर्मनी का क्या मामला है? पूरा जर्मनी भी पागल है। और अगर पूरा जर्मनी पागल है तो सारी दुनिया में कोई जर्मनी से बेहतर लोग नहीं है। माओ चीन को पागल कर सकता है, कोई दूसरा हिंदुस्तान को पागल कर सकता है, कोई स्टेलिन रूस को पागल कर सकता है, कोई निक्सन अमेरिका को पागल कर सकता है। तो बाकी सारी भीड़ भी सोए हुए लोगों की भीड़ है और सोए हुए नेता हैं। सोई हुई भीड़ है। सोए हुए आदमियों के हाथ में बड़ी ताकतें हैं और वे जिम्मेवार नहीं हैं। मैं आपसे कहना चाहूंगा, उनकी जिम्मेवारी दो तरह से कम हैं। वे दूसरे के प्रति जिम्मेवारी नहीं है। यह तो खतरनाक है ही, वह अपने प्रति भी जिम्मेवार नहीं है जो ज्यादा खतरनाक है। एक जिंदगी हमें मिलती है, उसे हम ऐसे गंवा देते हैं कि उसका हम कभी उपभोग नहीं करते जैसे एक बीज मिल जाए हमें और हम जिंदगी भर रखें, उसे सड़ा दे तो हमें सभी पागल कहेंगे। इस बीज से बहुत बड़ा वृक्ष पैदा

होता, बहुत फूल पैदा होते, बहुत सुगंध पैदा होती, बहुत छाया बनती। तुम इस बीज को रखे क्या रहे? हम भी अपनी जिंदगी के बीज को रखे-रखे मर जाते हैं। उस बीज से बहुत कुछ संभव है। उस बीज से एक कृष्ण पैदा हो सकता है। जो बीज आपके पास है, उससे एक राम पैदा हो सकता है। वह जो बीज मेरे पास है, उससे एक महावीर, एक बुद्ध पैदा हो सकते हैं, एक मोहम्मद, एक क्राइस्ट पैदा हो सकता है। हम सबके पास वह बीज है, जिसमें अनंत फूल लग सकते हैं सौंदर्य के, सत्य के, आनंद के। कबीर ने ठेका नहीं लिया था कि उनको आकाश में बादल घिरे हुए दिखाई पड़े। हमारे भीतर भी आकाश में बादल घिर सकते हैं, जिनसे अमृत की वर्षा हो। मीरा ने कोई ठेका नहीं लिया था कि प्रभु के पास घुंघरू बांध कर वही नाचे, हम भी नाच सकते हैं। जीसस का अकेले का ठेका नहीं है कि वे ही जान पाए कि जो भीतर है, वह नहीं मरता है। हम भी जान सकते हैं। लेकिन, हम सोए हुए कैसे जानेंगे? जानने के लिए जागना पहली शर्त है। और जागने के लिए यह जानना पहले जरूरी है कि क्या हम सोए हुए हैं और सपने देख रहे हैं? क्या हम सपने की स्थिति में जी रहे हैं? हमें ख्याल ठीक से गहरे बैठ जाना चाहिए कि हमारी सारी की सारी अब तक की जिंदगी एक सपने की जिंदगी है, जिसमें कल मौत आएगी और सब सपने ताश के पत्तों की तरह गिर जाएंगे, पानी के बुलबुले की तरह फूट जाएंगे, रेत के बनाए हुए मकानों की तरह ढह जाएंगे और मौत सब उजाड़कर एकदम अचानक हमें किसी और दुनिया में प्रवेश करा देगी। हमसे पहले कितने बिदा हो गए इस जमीन से! जहां आप बैठे हैं, उस जगह पर न मालूम कितने लोगों की कब्र बन चुकी होगी! ऐसी कोई जमीन का एक इंच भी टुकड़ा नहीं है, जहां कब्र बन चुकी होगी! ऐसी कोई जमीन का एक इंच भी टुकड़ा नहीं है, जहां कब्र न बन गई हो। जमीन पर मिट्टी का एक कण नहीं है, जो किसी आदमी के शरीर का हिस्सा न रहा हो। इस पृथ्वी पर कितने लोग जिए और मरे, उनके सपने सब कहां है? उनका यश कहां है? उनकी महत्वाकांक्षाएं कहां हैं? उनके बनाए हुए महल कहां हैं? उनके अहंकार के बनाए हुए बड़े-बड़े विस्तार के पर्वत कहां है? कहां है वे सब! उनकी सारी कथा खो गई। लेकिन हम उस पर आंख उठाकर न देखेंगे, क्योंकि उससे हमें भी खतरा है। अगर हमें यह दिखाई पड़ जाए कि जहां हम खड़े हैं, वहां कब्र है तो हमें बहुत देर न लगेगी, अपनी कब्र भी हमें दिखाई पड़ जाएगी। अगर हमें यह दिखाई पड़ जाए कि पहले के बनाए हुए महल सब कागज के सिद्ध हुए तो हम जिस महल को बना रहे हैं, उस महल को हम पत्थर का मान सकेंगे। अगर हमें पता चल जाए कि सारी महत्वाकांक्षाएं सपने की भांति खो गई, न महत्वाकांक्षी हैं, न महत्वाकांक्षाएं हैं, न उनके बनाए हुए साम्राज्य हैं, वे सब खो गए, जैसे सपने खो जाते हैं, तो हमारे अपने राज्यों का क्या होगा? हमारे अहंकार, हमारी महत्वाकांक्षा का क्या होगा? बीज मिटता है, ऐसे ही नष्ट हो जाता है। नहीं टूट पाता, नहीं वृक्ष बन पाता है। वीणा मिल जाती है लेकिन उसके तारों पर हम कभी अपनी अंगुलियां नहीं बजा पाते। उससे कभी संगीत पैदा नहीं हो पाता है। वीणा को ढोते-ढोते मर जाते हैं। और ध्यान रहे, जो कंधे पर वीणा को लेता है और बजाता नहीं, उसकी वीणा सिर्फ सूली सिद्ध होगी, क्रास सिद्ध होगी और कुछ नहीं होगी!

सातवां प्रवचन

धर्म मनुष्य-केन्द्रित हो

हजारों वर्षों से धर्म के नाम पर खोज चलती है। किसकी खोज चलती है? परमात्मा की खोज खलती है, मोक्ष की खोज चलती है, लेकिन हजारों साल के बाद भी न तो परमात्मा का कोई पता है, न आत्मा का कोई पता है, न मोक्ष का कोई पता। मेरे देखे यह खोज ही गलत हो गई। यह खोज वैसे ही गलत हो गई है जैसे कोई अंधा आदमी प्रकाश की खोज करे। यह खोज इसलिए गलत नहीं हो गई है कि प्रकाश नहीं है। प्रकाश तो है, लेकिन अंधा आदमी प्रकाश की खोज कैसे करे? और अंधा आदमी अगर प्रकाश की खोज में पड़ जाए, तो एक बात निश्चित है कि अंधे को प्रकाश नहीं मिल सकता है। अंधे आदमी को प्रकाश की बात ही नहीं करनी चाहिए। अंधे आदमी को आंख की खोज करनी चाहिए। आंख होगी तो प्रकाश होगा, आंखें नहीं होंगी तो प्रकाश नहीं होगा। प्रकाश हो और आंख न हो तो भी प्रकाश नहीं है। धर्म की खोज को ईश्वर की दिशा में लगाने से ही धर्म जगत में विकसित नहीं हो पाया। असली सवाल ईश्वर नहीं है, असली सवाल मनुष्य है। मनुष्य की खोज धर्म का आधार बनानी चाहिए। जिस दिन मनुष्य अपने को खोज लेता है, जिस दिन मनुष्य अपने को जान लेता है, उस दिन ईश्वर अनजाना नहीं रह जाता है। उस दिन मोक्ष भी अपनाया नहीं रह जाता। धर्म का केंद्र मनुष्य होना चाहिए, ईश्वर नहीं। धर्म का केंद्र मोक्ष नहीं होना चाहिए, पृथ्वी होनी चाहिए। और धर्म का केंद्र दूर आकाश की बातें नहीं होनी चाहिए, मनुष्य के मनुष्यत्व की बात होनी चाहिए। हजारों साल तक धर्म की बात करने के बाद भी दुनिया धार्मिक नहीं हो सकी, उसका कारण अधर्म नहीं है, उसका कारण नास्तिक भी नहीं है। उसका कारण है धर्म की दिशा का गलत होना। धर्म ने ऐसे लक्ष्य बना रखे हैं, जिन लक्ष्यों तक मनुष्य को नहीं ले जाया जा सकता है, जैसे अंधों को प्रकाश के दर्शन कराने का लक्ष्य कोई बना ले, और यह भूल ही जाए कि अंधों के पास आंख नहीं है। मनुष्य के पास मनुष्य ही नहीं है और तुम ईश्वर की बातें कर रहे हो। मनुष्य मनुष्य ही नई है और तुम मोक्ष की बातें कर रहे हो। मनुष्य खुद ही नहीं है अभी, खोजेगा किसे? खोज वह सकता है जो हो। हम खुद ही नहीं हैं, हम खोज क्या करेंगे?

एक अंधा मित्र एक घर में मेहमान हुआ। बहुत स्वागत-सत्कार हुआ उस अंधे मित्र का। भोजन के बाद वह अंधा मित्र पूछने लगा, 'यह तुमने जो मुझे खिलाया, बहुत रुचिकर लगा। यह है क्या?' घर के लोगों ने कहाः 'खीर है।' वह अंधा आदमी कहने लगाः 'खीर? खीर क्या है?' वे लोग कहने लगेः 'दूध से बनी है।' वह अंधा आदमी पूछने लगाः 'दूध? दूध कैसा होता है?' घर के लोग हैरान हो गए क्योंकि उन्होंने जो भी उत्तर दिया, अंधे ने उसकी को प्रश्न बना लिया। लेकिन घर के लोग यह भूल गए कि अंधे को न खीर दिखाई पड़ती है, न दूध दिखाई पड़ता है। उसे दिए गए सारे उत्तर आंखवाले के उत्तर हैं। एक बुद्धिमान ने कहा--'बगुला देखा है कभी? आकाश में उड़ता है वह। बगुले के सफेद पंखों की तरह शुभ्र होता है दूध।' वह अंधा आदमी कहने लगा--'मुश्किल से मुश्किल में डाल रहे हो मुझे। अब यह बगुला क्या होता है? यह सफेदी क्या होती है?' लेकिन घर के लोगों को फिर भी होश न आया कि हम अंधे से बात कर रहे हैं। आंख के बिना अंधेरा भी नहीं दिख सकता। आप सोचते हैं हम आंख बंद कर लेते हैं तो हमको अंधेरा दिखता है। तो आप यह मत सोचना कि अंधे को भी अंधेरा दिखता है। आप जो आंख बंद करने पर अंधेरा दिखता है क्योंकि आंख खुली होने से आपको उजाला दिखता है। उजाले के दिखने की वजह से आपको अंधेरा दिखता है। लेकिन घर के लोगों ने कहा 'बगुले की पंख की तरह

सफेद' तो अंधे आदमी ने कहाः 'आप क्यों मुझे परेशान करते हैं? तुमने उत्तर दिया। मेरा दूसरा सवाल खड़ा हो गया कि खीर यानी क्या? तुमने उत्तर दिया। मेरा दूसरा सवाल खड़ा हो गया कि आखिर दूर यानी क्या? तुम उत्तर देते हो कि बगुले के सफेद पंख जैसा। अब और मुश्किल में डाल दिए, यह बगुला क्या है? यह सफेद पंख क्या हैं? यह शुभ्रता, यह सफेदी क्या है?'

दिए गए सब जवाब प्रश्न बन गए। आज तक ईश्वर के संबंध में जितनी बातें कही गई हैं, सब प्रश्न बन गई हैं, कोई जवाब नहीं बना। आज तक मोक्ष के संबंध में जितनी बातें कही गई हैं, सुनने वालों ने उन्हें प्रश्न बना लिया है, कोई जवाब नहीं। इसका कुल कारण इतना है कि दो अलग आयामों पर बातचीत चल रही है। आदमी को ईश्वर से कोई मतलब है? आदमी को अपने से ही मतलब नहीं है, ईश्वर से क्या मतलब हो सकता है? आदमी को मोक्ष से कोई प्रयोजन नहीं है। फिर भी घर के लोग सोचने लगे कि कैसे समझाएं? तो अंधा कहने लगा--बगुले के संबंध में कुछ ऐसा समझाओ जो मैं समझ सकूं। एक समझदार आदमी ने कहा--हाथ पर हाथ फेरने से जैसा तुम्हें लगता है, बगुले की गर्दन पर भी हाथ फेरो तो ऐसा ही लगेगा, बगुले की गर्दन भी ऐसी ही सुडौल होती है। वह अंधा आदमी खड़ा होकर नाचने लगा। पता है क्यों? वह नाचने लगा क्योंकि वह समझ गया कि खीर कैसी होती है। वह समझ गया कि खीर मुड़े हुए हाथ की तरह होती है। क्या उसने गलत समझा? उसने बिल्कुल ठीक समझा। खीर से सवाल उठा, हाथ पर जाकर जवाब खतम हुए। खीर और हाथ का मेल एक हो गया। घर के लोग अपना सिर पीटने लगे और कहने लगे कि इससे तो अच्छा था कि अंधा अज्ञान में ही रहता। यह ज्ञान तो और भी खतरनाक है। असल में दूसरे से मिला हुआ ज्ञान हमेशा ही खतरनाक होता है। जो हमने नहीं जाना है, वह हम दूसरे से ले लें, वह खतरनाक सिद्ध होता है। अज्ञान कम से कम हमारा होता है। ज्ञान उधार होता है। जो अपना है, वही ठीक है। अंधे आदमी को यह पता था कि मैं नहीं जानता हूं, बात ठीक थी, सत्य थी। अब वह समझता है कि मैं जानता हूं। लेकिन वह क्या जानता है? वह यह जानता है कि दूध मुड़े हुए हाथ की तरह होता है। सारी समझाने की कोशिश यहां ले आई। क्यों ऐसा हुआ? समझाने वालों ने एक भूल कर दी। समझाने की दिशा गलत थी। अंधे आदमी को समझाना था कि तेरे पास आंखें नहीं है। इसलिए हम कोई उत्तर न देंगे। आंखों का कोई भी उत्तर अंधों के लिए अर्थहीन है। अगर तुझे जानना ही है तो चल तेरी आंख का इलाज करें। आंख जिस दिन तेरे पास होगी तू जानेगा कि दूध कैसा है, तू जानेगा कि बगुला कैसा है, सफेदी कैसी है। फिर तुझे समझाना नहीं पड़ेगा, तू समझ जाएगा।

लेकिन दुनिया को धर्मगुरु समझा रहे हैं कि ईश्वर ऐसा है, मोक्ष ऐसा है, आत्मा ऐसी है, स्वर्ग ऐसे हैं, नर्क ऐसे हैं। सब फिजूल बकवास है। सवाल यह नहीं है कि मोक्ष कैसा है। सवाल यह नहीं है कि ईश्वर कैसा है। सवाल असल में यह है कि जिस आदमी को हम समझा रहे हैं वह बिल्कुल अंधा है इन चीजों के प्रति, वह अपने प्रति भी अंधा है। धर्म का मूल आधार सिर्फ मानस शास्त्र हो सकता है। दूर नहीं ले जाना है आदमी को, उसके पास ले जाना है। वह क्या है? उसकी खोजबीन करनी है। और जिस दिन कोई आदमी अपने को खोज लेता है, उस दिन इस दुनिया में अनखोजा कुछ भी नहीं रह जाता। जो अपने को जान लेता है, वह परमात्मा को भी जान लेता है। इसलिए धर्म का ईश्वर से कोई भी संबंध नहीं है। धर्म का संबंध मनुष्य से है। धर्म का मनुष्य-केंद्रित होना चाहिए। अब तक वह ईश्वर-केंद्रित है। ईश्वर को धर्म की कोई भी जरूरत नहीं है, जरूरत है आदमी को। धर्म को आदमी से कोई मतलब नहीं है। धर्म की किताबों में आदमी से कोई संबंध ही नहीं है। धर्म की किताबें विस्तार से बातें करती हैं ईश्वर को सिद्ध करने की। धर्म की किताबें नर्क और स्वर्ग के नक्शे बनाती हैं। धर्म की किताबें मोक्ष के संबंध में विस्तीर्ण चर्चा करती हैं, लेकिन मनुष्य के संबंध में धर्म कोई भी बात नहीं

करता। धर्म कहता है कि मनुष्य आत्मा है, लेकिन यह मनुष्य के बाबत चर्चा नहीं है। यह आत्मा के बाबत चर्चा है। इसलिए धर्म मनुष्य को रूपांतरित नहीं कर पाया और करीब-करीब व्यर्थ हो गया। मनुष्य के जीवन में धर्म से कोई क्रांति नहीं आती, ऐसा मालूम पड़ता है। मैं कितने लोगों से मिला हूं, पर मुझे अब तक ऐसा आदमी नहीं मिला जिसका सचमुच ही ईश्वर से कोई प्रयोजन हो।

हां, ईश्वर की बातें करने वाले लोग मिलते हैं और कहते हैं कि हमें ईश्वर को खोजना है। लेकिन अगर बहुत गौर से उनके साथ थोड़ी बातचीत की जाए तब पता चलता है कि ईश्वर से उन्हें कोई मतलब नहीं है। उनका चित्त दुखी है। वह दुख से मुक्त होना चाहते हैं। किसी किताब में उन्होंने पढ़ लिया है कि ईश्वर को जानने से दुख से मुक्ति हो जाती है। वे कहते हैं मुझे ईश्वर को खोजना है। उनका प्रयोजन है दुख से मुक्ति कैसे हो जाए। ईश्वर की बात किसी शास्त्र से सुन ली है। एक आदमी अशांत है। वह अशांति से छुटकारा चाहता है। वह कहता है मोक्ष कैसे मिले? मुक्ति कैसे हो? अगर उसके भीतर छानबीन करें तो पता चलेगा कि उसे मोक्ष से कोई मतलब नहीं है। उसने शास्त्रों से सुन लिया है, गुरुओं से सुन लिया है कि मोक्ष में ही शांति मिलती है। उसको शांति चाहिए। तो वह कहता है मोक्ष कैसे मिले?

जैसे एक आदमी बीमार है, टी. बी. से परेशान है और वह कहता है कि मुझे मोक्ष चाहिए, क्योंकि उसने किसी किताब में पढ़ लिया है कि मोक्ष में कोई बीमारी नहीं होती। असल में उसे टी.बी. से छुटकारा चाहिए और वह आदमी कहता है कि मुझे मोक्ष चाहिए। तो क्या उसके इस मोक्ष चाहने से मेडिकल साइंस विकसित होगी? कैसे विकसित होगी? अगर वह ठीक-ठीक आकर कहे कि मैं बीमार हूं, मुझे बीमारी से छुटकारा चाहिए तो मेडिकल साइंस विकसित होगी, नहीं तो नहीं विकसित होगी। धर्म का विज्ञान विकसित नहीं हुआ क्योंकि धर्म का मौलिक चाह क्या है, वह हम नहीं पकड़ पाए और उस चाह को गलत दिशा में संलग्न कर दिया। अशांत आदमी चाहता है मुझे ईश्वर चाहिए, पर अशांत आदमी ईश्वर को कभी नहीं पा सकता। लोग कहते हैं, ईश्वर को पाने से शांति मिलेगी, यह बिल्कुल गलत कहते हैं। असली बात उलटी है। असली बात यह है कि जो शांत हो जाता है उसे ईश्वर मिलता है। ईश्वर के मिलने से शांति नहीं मिलती। अगर ईश्वर के मिलने से शांति मिलती हो तो इसका मतलब हुआ कि अशांत आदमी को ईश्वर मिल सकता है, और अगर अशांत आदमी को ईश्वर मिल सकता है तो हम सब काफी अशांत हैं। क्या और अशांत होना पड़ेगा, तब ईश्वर मिलेगा? अशांत आदमी को ईश्वर नहीं मिल सकता। इसलिए मैं कहता हूं कि ईश्वर के मिलने से शांति नहीं मिल सकती। हां, शांति मिल जाए तो ईश्वर मिल सकता है। इसलिए असली सवाल ईश्वर नहीं है, असली सवाल है शांत चित्त।

अगर ईश्वर को केंद्र बनाते हैं तो हिंदू अलग होगा, मुसलमान अलग होगा, ईसाई अलग होगा। दुनिया में 3000 धर्म हैं और अगर मनुष्य के चित्त की शांति को केंद्र बनाते हैं तो दुनिया में एक धर्म होगा, तीन सौ धर्म नहीं हो सकते, क्योंकि मन की अशांति लाने के नियम अलग नहीं हो सकते। हिंदू अशांत हो तो उसके नियम अलग नहीं हो सकते। शांति लाने के नियम और सूत्र तो समान हैं। अशांत की तो वैज्ञानिक प्रक्रिया है। हम कैसे अशांत होते हैं, यह हम जानते हैं, इसे हम खोज सकते हैं। हम कैसे शांत होंगे, इसे हम खोज सकते हैं। यह तो विज्ञान बन सकता है। धर्म उस दिन विज्ञान बन जाएगा जिस दिन हम धर्म को वास्तविक प्रश्नों से जोड़ेंगे। जब तक हम अवास्तविक प्रश्नों से जोड़ेंगे तब तक धर्म कभी विज्ञान नहीं बन सकता। ध्यान रहे, आनेवाली दुनिया विज्ञान की होगी। अगर धर्म वैज्ञानिक बनता है तो वह टिकेगा, अन्यथा वह जा चुका। अब वह बच नहीं सकता। धर्म का वैज्ञानिक नहीं बनने देगा वह आदमी जो कहता है कि ईश्वर का, मोक्ष का, निर्णय करना धर्म है। मनुष्य के चित्त को बदलना तथा उसके चित्त की अशांति और दुख को रूपांतरित करना धर्म है। चित्त शांत हो जाए,

मौन हो जाए, तो शांत और मौन चित्त में वैसे ही जीवन के सत्य झलक आते हैं जैसे शांत झील में ऊपर का चांद दिखाई पड़ने लगता है। निर्धूल दर्पण का आपका चेहरा बन जाए, ऐसे ही दर्पण जैसा चित्त जब शांत होता है तो जीवन के सत्य उसमें दिखाई पड़ने शुरू हो जाते हैं। जीवन के सत्यों का निर्णय नहीं करना है। जीवन के सत्यों और हमारे बीच से जो धूल का, अशांति का, बड़ा पर्दा है वह कैसे दूर हो, असली सवाल यह है। क्या मुसलमान और तरह से अशांत होता है और हिंदू और तरह से अशांत होता है? पुरुष और तरह से अशांत होता है स्त्री और तरह से अशांत होती है, कभी आपने सोचा? अशांति के नियम तो जाहिर हैं। दुनिया में किसी को भी अशांत होना हो तो उन्हीं नियमों का पालन करना पड़ेगा, और शांत होना हो तो भी। धर्म क्यों इतने अलग-अलग हो गए? धर्म के अलग होने का कारण था कि धर्म को हमने हवाई बातों पर केंद्रित कर दिया। यह खतरनाक बात हो गई। फिर बंटवारा बिल्कुल स्वाभाविक था। अंधों को हमने प्रकाश-केंद्रित बना दिया और अंधे विचार करने लगे कि प्रकाश कैसा है? आंखवाला तो विनम्र भी हो सकता है। अंधे कभी विनम्र नहीं होते। क्योंकि अंधे को डर लगता है कि अगर हमने कुछ धीरे से कहा, विनम्रता से कहा तो कहीं शक न हो जाए कि यह आदमी नहीं जानता है। जिन-जिन को भीतर शक होता है जानने में, वे दावेदार की तरह कहते हैं कि जो मैं कहता हूं वही है। इसे मैं सिद्ध कर दूंगा। सिद्ध सिर्फ अंधे करना चाहते हैं। आंख वाले हंस कर बात टाल देंगे। वे कहेंगे कि ठीक है। आंख वाला विनम्र हो सकता है क्योंकि प्रकाश को जानता है। अंधा विनम्र नहीं हो सकता क्योंकि प्रकाश को नहीं जानता, केवल दावा करता है। और जब दावा करना है तो दावा पूर्ण करना है, नहीं तो कमजोरी जाहिर होती है। दुनिया में इतने धर्मों की जरूरत नहीं है। और जब तक इतने धर्म दुनिया में हैं तब तक धर्म धर्म नहीं हो सकता।

दुनिया में आदमी को भटकने का जो रास्ता मिल गया है वह अधर्म के कारण नहीं मिल गया है, वह बहुत धर्मों के कारण मिल गया है। यह बहुत आश्चर्य की बात है कि सत्य अनिर्णीत है और असत्य बिल्कुल निर्णीत है। शांति अनिर्णीत है और अशांति बिल्कुल निर्णीत है। और जब सत्य पर झगड़ा हो, और इतना झगड़ा हो कि तय करना मुश्किल हो जाए कि क्या सत्य है तो आदमी असत्य की ओर चला ही जाएगा। वह कम से कम निश्चय तो हैं। उसमें कोई झगड़ा तो नहीं है। धर्म के संबंध में विराट झगड़ा है और इसलिए आदमी को अधर्म की दिशा मिल जाती है। अभी तो यह तय ही नहीं है कि धर्म क्या है, ईश्वर क्या है, है भी या नहीं। धर्म अनिर्णीत है और अधर्म बिल्कुल निर्णीत है। जो निर्णीत है वह आदमी को आकर्षित कर लेता है। दुनिया में जिस दिन धर्म का विज्ञान होगा, उस दिन अधर्म की ताकत टूटने लगेगी। इसलिए मैं कहता हूं हिंदू, मुसलमान, जैन, ईसाई, बौद्ध सभी मिलकर दुनिया को अधर्म में डुबोए रखने का काम कर रहे हैं। जब तक ये विदा नहीं होते, तब तक दुनिया धार्मिक नहीं हो सकती। लेकिन ये चाहते भी नहीं कि दुनिया धार्मिक हो जाए। क्योंकि जिस दिन दुनिया धार्मिक हो जाएगी उस दिन पुरोहित के धंधे का अंत हो जाएगा।

एक डाक्टर एक मरीज का इलाज करता है। ऐसे ऊपर से वह पूरी चेष्टा करता है मरीज को ठीक करने की, चेतन मन से। लेकिन अचेतन मन चाहता है कि मरीज मरीज बना रहे। क्योंकि अगर सब मरीज ठीक हो जाएं तो डाक्टर पहले मर जाएगा, मरीज बाद में मरेगा। डाक्टर के लिए बहुत जरूरी है कि मरीज मरीज रहे, और अगर पैसे वाला मरीज है तो थोड़ी ज्यादा देर मरीज रहे। ऊपर चेतना मन से उसकी पूरी शिक्षा उसे कहती है कि ठीक करो और वह पूरे चेतन मन से ठीक करने की कोशिश करता है, लेकिन अचेतन मन में, गहरे में वह मरीज को देखकर खुश होता है। डाक्टर भी बात करते हैं आपस में कि इस वक्त सीजन चल रहा है।

मैंने सुना है एक रात एक होटल में तीन-चार लोगों ने खूब खाना खाया, खूब शराब पी। आधी रात तक वे जमे रहे। फिर जब आधी रात को वे बिल चुकाकर बाहर निकलने लगे तो होटल के मैनेजर ने अपनी पत्नी को कहा कि ऐसे जानदार ग्राहक रोज आ जाएं तो हम कुछ ही दिनों में खुशहाल हो जाएं। चलते वक्त जिस आदमी ने पैसे चुकाए थे उसने कहा, भगवान से प्रार्थना करो कि हमारा धंधा जोर से चले तो हम भी रोज आएंगे। चलते वक्त मैनेजर ने पूछा कि यह तो बता दीजिए कि आपका धंधा क्या है? उस आदमी ने कहा, मैं मरघट पर लकड़ी बेचने का काम करता हूं। भगवान से प्रार्थना करो कि धंधा जोर से चले। तो डाक्टर का अचेतन मन तो यह कहता है कि बीमारी फैले, और डाक्टर का चेतन मन कोशिश करता है कि बीमारी दूर हो। पुरोहित, साधु, संन्यासी ऊपर से तो बात करते हैं कि धर्म फैले, लेकिन अचेतन मन में चाहते हैं कि अधर्म रहे, क्योंकि अधर्म ही उसके व्यवसाय का आधार है। जिस दिन अधर्म मिट जाएगा, उस दिन पुरोहित कहां होगा?

मैंने सुना है कि एक पहाड़ी रास्ते से एक चर्च का पादरी किसी गांव में प्रवचन के लिए जाता था। पास की ही खाई में किसी आदमी ने जोर से आवाज लगाई कि मैं मर रहा हूं, मुझे किसी ने छुरे मारे हैं। ऐ पादरी, ऐ पुरोहित, आ मेरी सहायता कर। पादरी ने नीचे झांक कर देखा। एक आदमी खून में लथपथ पड़ा है। उसके निकट एक छुरा है। किसी ने छुरा मारा है। काफी घाव लगे हैं। खून नीचे बह रहा है। पादरी को जाकर ठीक समय पर चर्च में 'प्रेम' के ऊपर प्रवचन देना है। उसने सोचा कि अगर इस झंझट में पड़ा तो मेरे प्रवचन का क्या होगा। वह भागने लगा। लेकिन उस नीचे पड़े आदमी ने चिल्लाया कि मैंने तुम्हें भली भांति पहचान लिया है। मैं उसी गांव का रहने वाला हूं जिसमें तुम आज प्रेम पर प्रवचन देने जा रहे हो। मैं भी सुनने आने वाला था। वहीं के लिए निकला था लेकिन यहां मुझे छुरे मार दिए गए। ध्यान रहे, अगर मैं बच गया तो सारे गांव में खबर कर दूंगा कि यह आदमी प्रेम पर प्रवचन देने को इतनी जल्दी में था कि एक आदमी मर रहा था और उसे उठाने नीचे नहीं उतरा। इसके प्रवचन का क्या अर्थ हो सकता है? पादरी डरा कि कहीं जाकर उसने गांव में यह खबर कर दी तो बड़ी मुश्किल होगी। पादरी नीचे उतरा। जाकर उसके खून से भरे चेहरे को पोंछा। चेहरा पोंछते वक्त उसके हाथ कंप गए क्योंकि यह तो पहचाना हुआ आदमी मालूम पड़ा। उसने कहा--तुम तो पहचाने हुए मालूम पड़ते हो। उस आदमी ने कहा--अच्छी तरह, क्योंकि तुम्हारे चर्च में मेरी तस्वीर लटकी हुई है, मैं शैतान हूं। पादरी तो एकदम घबरा गया। वह खड़ा हो गया, भगवान का नाम लेने लगा कि अच्छा है कि तुम मर जाओ। क्योंकि तुम्हारे मरने के लिए तो हम सारी चेष्टाएं कर रहे हैं निरंतर। अच्छा हुआ कि तुम मार डाले गए, तुम्हें किसी ने छुरे भोंक दिए हैं। तुम जल्दी मर जाओ। वह शैतान जोर से हंसने लगा। उसने कहा--पागल पादरी! मालूम होता है तुझे धंधे की पूरी खबर नहीं है। जब तक मैं हूं तब तक तेरा धंधा है। जिस दिन मैं मर जाऊंगा उस दिन तू भी मर जाएगा। मुझे बचाने की जल्दी कोशिश कर। तेरी दूकान चलती है, जब तक शैतान है। जिस दिन दुनिया में शैतान नहीं होगा, तेरी दूकान को कौन पूछेगा? पादरी को ख्याल आया, यह तो टेड सीक्रेट था। यह तो बात सच है। उसने जल्दी से शैतान को उठाया और कहा--मरो मत, ठीक से सांस लो। मैं तुम्हें अस्पताल ले चलता हूं। भाड़ में जाए वह प्रवचन और धर्म। क्योंकि तुम हो तभी तक हम है, यह हम समझ गए। दुनिया के धर्म-गुरु और साधु और संन्यासी की जमात नहीं चाहती कि समाज धार्मिक हो जाए। समाज को अधार्मिक बनाने की सबसे बुनियादी रास्ता यह है कि धर्म को निर्णीत मत होने दो, धर्म को विज्ञान मत बनने दो; धर्म का अंधविश्वास रहने दो। जब तक धर्म अंधविश्वास है तब तक दुनिया धार्मिक नहीं हो सकती। लोग जितना अधार्मिक होते हैं उतना साधु, संन्यासी, पादरी और पुरोहित के लिए धर्म का प्रचार करने के लिए ठीक मौसम निर्णीत हो जाता है। आज तक धर्म को विज्ञान नहीं बनने दिया गया। धर्म तक विज्ञान बनेगा जब वह मनुष्य केंद्रित होगा, ईश्वर-

केंद्रित नहीं। लेकिन पादरी-पुरोहित कहेंगे कि अगर धर्म मनुष्य-केंद्रित हो गया तो धर्म चला गया, क्योंकि हम तो ईश्वर की बात करते हैं, इसलिए धर्म धर्म है। पर यह बात झूठ है। ईश्वर की बातों से धर्म धर्म नहीं होता। धर्म होगा मनुष्य के व्यक्तित्व की सभी खोज-बीन के रूपांतर से। और जिस दिन मनुष्य बदलेगा, जिस दिन मनुष्य दूसरा हो जाएगा, उस दिन वह दूसरी तरह से दुनिया को देखेगा। अभी हम जिस तरह के आदम हैं हमें दुनिया में कहीं भी ईश्वर दिखाई नहीं पड़ सकता। यह ध्यान रहे, प्रकाश के कारण प्रकाश नहीं दिखाई पड़ता, हमारे पास आंख होनी चाहिए तो प्रकाश दिखाई पड़ता है।

हमें सिवा पदार्थ के कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता, हालांकि हम अध्यात्म की बातें करते हैं। बातें कितनी ही हम अध्यात्म की करें, हम सब पदार्थवादी हैं; क्योंकि पदार्थ दिखाई पड़ता है, परमात्मा तो दिखाई नहीं पड़ता। परमात्मा हमारा विश्वास है, पदार्थ हमारा अनुभव है, और अनुभव के मुकाबले विश्वास कभी नहीं जीतता है। इसीलिए रोज परमात्मा हारता है और पदार्थ जीतता है। परमात्मा के सामने जाकर आदमी प्रार्थना करता है कि मेरे लड़के की नौकरी लगा दो। इसे परमात्मा से कोई मतलब है? परमात्मा को वह एक एजेंट बना रहा है, लड़के को नौकरी दिलाने के लिए। असली सवाल नौकरी का है। कहता है मेरी बीमारी दूर कर दो, मेरी गरीबी मिटा दो। भगवान का इससे कोई संबंध है? भगवान के सामने खड़े होकर भी पदार्थ की मांग जारी रहती है। सारी दुनिया के लोग पदार्थवादी हैं। जब तक जीवन आमूल रूपांतरित न हो कोई आदमी आध्यात्मिक हो नहीं सकता, केवल बातचीत कर सकता है। इसलिए मैं कहता हूं कि पश्चिम के लोग ईमानदार भौतिकवादी हैं, पूरब के लोग बेईमान भौतिकवादी हैं। सारी दुनिया ईमानदारी से भौतिकवादी है और हम बहुत बेईमान हैं। हमें दिखाई तो पदार्थ पड़ता है लेकिन बातें हम परमात्मा की करते हैं। हाथ परमात्मा की तरफ जोड़ते हैं, आंखें पदार्थ पर लगी रहती हैं। पूरे समय हमारा दिमाग एक दोहरी प्रक्रिया में चलता है। सारे समय भगवान की बात, और सारे समय पदार्थ की चिंता। भगवान की बात करेंगे और भगवान से उलटा जीएंगे। इससे तो बेहतर है कि जो दिखाई पड़ता है उसकी सचाई को स्वीकार करके जीना शुरू किया जाए। मुझे लगता है कि ठीक-ठीक ईमानदार भौतिकवादी कभी न कभी अध्यात्मवादी हो जाता है लेकिन बेईमान भौतिकवादी कभी अध्यात्मवादी नहीं हो पाता। वह तो भौतिकवाद और अध्यात्मवाद के बीच में एक स्वर्ण-पथ निकाल लेता है। रहता भौतिकवादी है, बातें अध्यात्म की करके उसे रास्ता मिल जाता है। उसने एक प्रवंचना का रास्ता खोज लिया। पश्चिम का भौतिकवाद वहां पहुंचा जा रहा है जहां 50 वर्षों में आध्यात्मिक जीवन की शुरुआत हो जाएगी। पश्चिम का भौतिकवाद वहां खड़ा हो गया है जहां अध्यात्म का जन्म अनिवार्य होगा। लेकिन हमारे भविष्य में कोई धर्म का जन्म होगा, इसकी आशा नहीं बांधी जा सकती, क्योंकि धर्म के जन्म के लिए पहले तो हमें ईमानदार होना पड़ेगा, और ईमानदार होने की हमने हिम्मत खो दी है। क्योंकि ईमानदारी कहती है कि पदार्थ सत्य है और परमात्मा का कोई पता नहीं है। लेकिन हम बेईमान हैं। कहते हैं पदार्थ माया है और परमात्मा सत्य है। पदार्थ सत्य है, वह हमें सत्य दिखाई पड़ता है, 24 घंटे उसमें हम जीते हैं, उसको हम कहते हैं माया है और जिस परमात्मा का हमें बिल्कुल पता नहीं चलता, उसको हम कहते हैं सत्य है। हम कहते हैं ब्रह्म सत्य है और जगत माया है। ऐसा भी शीर्षासन कोई कौन कर सकती है? बहुत हैरानी की बात है। एक ईमानदार चिंतन भी नहीं है इसके पीछे। और जो शुरू से ही बेईमान है, वह कैसे धार्मिक हो सकता है?

धर्म को विज्ञान बनाए बिना मनुष्य जाति और धर्म के बीच कोई गहरा अंर्तसंबंध नहीं हो सकता। जब तक मनुष्य को धर्म न बदल सके, तब तक कुछ नहीं हो सकता। लेकिन कोई धर्म गुरु चाहता भी नहीं कि मनुष्य बदल जाए। मनुष्य जैसा है, ऐसा ही रहे; और नीचे गिर जाए तो खुशी होती है। क्योंकि जितना आदमी नीचे

गिरता है उतना उपदेश रसपूर्ण हो जाता है। यह बड़े मजे की बात है कि किसी को ऊंचा उठाने में भी अहंकार को बड़ी तृप्ति होती है। किसी को नीचा देखने में भी बड़ा मजा आता है। जब समाज नीचे गिरता है तो कुछ लोगों को बहुत आंतरिक रस और आनंद मिलना शुरू हो जाता है कि समाज इतने नीचे गिर गया। इसको ऊंचा उठाना है। धार्मिक आदमी रोता है स्थिति देखकर। जो भीतर से अधार्मिक हैं, और ऊपर से धार्मिक, वे प्रसन्न होते हैं। उन्हें दिखाई पड़ता है कि यह अच्छा अवसर है। यह दशा ईश्वर को केंद्र में रखने से पैदा हुई। मनुष्य को रखना पड़ेगा। केंद्र में। मनुष्य को केंद्र में रखने का क्या मतलब होता है?

मनुष्य को केंद्र में रखना एक और ढंग से सोचना है। क्योंकि जब हम मनुष्य को केंद्र में रखते हैं तो सवाल यह नहीं है कि सृष्टि कब पैदा हुई? फिजूल है यह बात। इससे कोई प्रयोजन नहीं है कि सृष्टि कब बनी। सिर्फ नासमझ अपना समय और दूसरों का समय खराब करते हैं इस तरह की बातों में कि सृष्टि कब बनी है। बुद्धिमान आदमी जानता है जो है, वह है। वह कभी नहीं बनी। कभी कैसे बन सकती है? कहां से आएगी? कैसे बनेगी? जो है, वह है। इसलिए सृष्टि कब बनी या नहीं बनी, इस झंझट में नहीं पड़ता। वह इस झंझट में भी नहीं पड़ता कि किसने बनाई, क्योंकि उसे अपना ही पता-ठिकान नहीं है तब वह कैसे इस सारे विराट, अनादि, अनंत जगत को बनानेवाले का विचार करे? यह सिर्फ अहंकारी लोग विचार करते हैं। यह कभी आपने सोचा भी नहीं होगा कि मनुष्य सबसे बड़ा अहंकार क्या कर सकता है। वह यह कर सकता है कि मैं सब जानता हूं, मैं सर्वज्ञ हूं। एक धनी आदमी क्या अहंकार करेगा? यह कह सकता है कि मेरे पास इतने करोड़ रुपये हैं। लेकिन वह भी जानता है कि करोड़ रुपयों का महल रेत से ज्यादा बड़ा नहीं है। कभी भी खिसका जा सकता है। कल जो करोड़पति था, आज भिखमंगा है। मनुष्य ने जो सबसे बड़े अहंकार की घोषणाएं की हैं, वह सर्वज्ञता की है। आइंस्टीन से किसी ने पूछा कि एक वैज्ञानिक में और एक धार्मिक व्यक्ति में आप क्या अंतर पाते हैं? आइंस्टीन ने कहा कि वैज्ञानिक आदमी से 100 बातें पूछिए तो 18 बातों में तो वह कह देगा कि मैं जानता हूं। दो बातों में मुश्किल से कहेगा कि मैं जानता हूं और वह भी इस शक के साथ कहेगा कि अभी इतना जानता हूं, कल बदल सकता है। लेकिन धार्मिक से 100 बातें पूछिए तो 100 के ही बाबत कहेगा कि मैं पूरा जानता हूं और जो जानता हूं उसमें बदलने का कोई सवाल नहीं, क्योंकि वह पूर्ण ज्ञान है। मैं आप से कहना चाहता हूं कि वैज्ञानिक के पास ज्यादा धार्मिक चित्त है और धार्मिक के पास बिल्कुल ही अधार्मिक चित्त है। क्योंकि वैज्ञानिक विनम्रता से यह कहता है कि वह मैं नहीं जानता हूं और जानता हूं वह भी संदिग्ध है क्योंकि कल ज्ञान की और नई धाराएं आएंगी। सब बदल जाएगा। इसलिए अब तक जो हम जानते हैं उसके आधार पर कहते हैं कि ऐसा है। लेकिन ऐसा ही है, ऐसा हम नहीं कह सकते हैं, और कैसा हो सकता है वह कल बताएगा। ज्ञान रोज खुलता जाएगा। रोज नए ज्ञान के अवतरण होंगे। धार्मिक आदमी कहता है परमात्मा अनंत है, लेकिन फिर भी कहता है मैं परमात्मा को जानता हूं। सत्य बात यह है कि वैज्ञानिक की मान्यता कहती है कि जो है, वह अनंत है और जो अनंत है उसे हम कैसे जान सकते हैं? हम थोड़ा-बहुत जान पाते हैं। वह जान पाना भी कभी पूरा नहीं हो सकता। क्योंकि पूरे को हम कभी नहीं जानते। जैसे कि कोई आदमी एक उपन्यास का एक पन्ना पढ़ ले और सोचे कि मैंने पूरा महाकाव्य जान लिया। जैसे कि किसी आदमी को गीत की एक कड़ा हाथ लग जाए और वह समझे कि मैंने पूरा महाकाव्य जान लिया। हम इतना थोड़ा जानते हैं, और इतना बड़ा अनजाना छूट जाता है कि सिर्फ पागल और अज्ञानी और हद दर्जे के मूढ़ यह दावा कर सकते हैं कि सब जान लिया गया है। जो आदमी कहता है सब जान लिया गया है वह आदमी परमात्मा का अनंत नहीं मानता, क्योंकि अनंत कभी भी पूरा नहीं जाना जा सकता। सर्वज्ञ का दावा सिर्फ उस परमात्मा के प्रति हो सकता है जिसकी सीमा है क्योंकि जो भी जान लिया गया है वह सीमित

हो गया। जानने ने उसकी सीमा बना दी। जो नहीं जाना गया वही असीम हो सकता है। एक तरफ हम कहते हैं परमात्मा अनंत है और दूसरी तरफ कहते हैं कि मैं परमात्मा को जानता हूं। विज्ञान ने पहली बार इस बात को स्पष्ट कर दिया है कि जो है वह अनंत है, और इसलिए मनुष्य उसे पूरा कभी नहीं जान पाएगा। हमें कुछ भी पता नहीं है कि जगत कैसे चल रहा है, हमें कुछ भी पता नहीं है कि जगत कैसे चलेगा, जीवन के सारे सूत्र अज्ञात हैं। जो थोड़ी-बहुत तोड़-जोड़ करके हम जान पाते हैं वह इतना कम है कि उसके कारण दावेदार नहीं हुआ जा सकता। विज्ञान ने पहली बार विनम्रता सिखाई। हालांकि सारे धर्म कहते हैं कि आदमी को विनम्र होना चाहिए, लेकिन किसी धर्म ने आदमी को आज तक विनम्रता नहीं सिखाई। धर्मों ने मनुष्य को अहंकार सिखलाया। उसी अहंकार ने हिंदू को मुसलमान से लड़ाया क्योंकि सब सर्वज्ञ थे। जहां सब सर्वज्ञ हों वहां बड़ी मुश्किल है, क्योंकि कोई झुकने को तैयार नहीं है कि दूसरा भी ठीक हो सकता है। धर्मों ने युद्ध करवाए पर उन्होंने बातें विनम्रता की कीं।

अगर मनुष्य को केंद्र बनाएं और परमात्मा को केंद्र न बनाएं तो चीजें बहुत सुलझ सकती हैं, क्योंकि मनुष्य जाना जा सकता है। फिर हम खुद मनुष्य है। हमें कहीं जानने के लिए दूर नहीं जाना पड़ेगा, हम अपने भीतर उतर सकते हैं। चीन में एक सम्राट था। उस सम्राट ने अपने राज्य में खबर भिजवाई कि मैं राज्य की मोहर बनवाना चाहता हूं और उस मोहर पर एक बोलता हुआ मुर्गा चाहता हूं। राज्य भर के चित्रकारों में जो श्रेष्ठतम चित्र बनावेगा उसको लाखों रुपए पुरस्कार मिलेंगे और वह चित्रकार 'राज्य-कलागुरु' भी हो जाएगा। हजारों चित्रकारों ने चित्र बनाए। जब सारे चित्र आए तो राजा दंग रह गया, क्योंकि तय करना मुश्किल था। सभी चित्र अदभुत थे। एक से एक सुंदर चित्र। कैसे निर्णय हो? राजा पहले तो सोचता था कि निर्णय आसान होगा लेकिन निर्णय बहुत मुश्किल था। राजा पहले तो सोचता था कि निर्णय आसान होगा लेकिन निर्णय बहुत मुश्किल हो गया। तब उसने पूछा कि कौन निर्णय करेगा? किसी कलागुरु को बुलाओ। एक बूढ़ा चित्रकार था जिसने प्रतियोगिता में भाग नहीं लिया था, उसे बुलाया गया। उस बूढ़े से कहा कि इन चित्रों को देखकर पहचानो कि कौन-सा चित्र ठीक है। उसको हम राज-मोहर पर रखना चाहते हैं। वह बूढ़ा अंदर बैठा गया। दरवाजे उसने बंद कर लिए और साथ में एक मुर्गा भी ले गया। राजा ने पूछा, इस मुर्गे को किसलिए ले जा रहे हो? उसने कहा कि वह आप नहीं जानते। मैं कैसे पहचानूंगा कि कौन मुर्गा ठीक है? मुर्गा ही पहचान सकता है। राजा ने कहा--पागल हो गए हो। मुर्गा कैसे पहचानेगा? उस बूढ़े ने कहा, मैं जानता हूं। एक-एक चित्र खिड़की से बाहर खींचा जाने लगा। वे अस्वीकृत हो गए। अंत में सारे चित्र बाहर फेंक दिए गए तो राजा मुश्किल में पड़ा। पहले तो मुश्किल यह थी कि कौन-सा चित्र ठीक है। उस बूढ़े ने सब चित्र रद्द कर दिए। राजा ने पूछा, क्या मामला है? ये सब चित्र बेकार हैं? उस बूढ़े ने कहा, सब बेकार हैं। कसौटी क्या है, राजा ने पूछा। उसने कहा, मैं मुर्गे को भीतर लाया और हर चित्र के सामने मुर्गे को खड़ा किया। मुर्गे ने किसी भी चित्र में मुर्गे को देखा भी नहीं। चिंता भी नहीं की। अगर मुर्गे को चित्र जीवित मालूम पड़ता तो मुर्गा बांग देता, लड़ने को खड़ा हो जाता। लेकिन मुर्गे ने कोई फिक्र ही नहीं की। चित्र पड़ा रहा एक कोने में, मुर्गा कमरे में घूमता रहा। मुर्गे ने ख्याल नहीं किया कि दूसरा भी मुर्गा है। इसलिए बेकार है, चित्र जिंदा नहीं है।

राजा ने कहा, तब तो बड़ी मुश्किल हो गई, जिंदा चित्र कैसे बनेगा? आप बनाएं। उस बूढ़े ने कहा, मैं बहुत बूढ़ा हो गया और अब इस उम्र में बड़ी कठिनाई पड़ेगी। राजा ने कहा, क्या कठिनाई है? उस बूढ़े ने कहा, पहले मुझे मुर्गा बनना पड़ेगा, तब मैं मुर्गा बना सकता हूं। मुर्गे को बाहर से देखना है, उसकी आकृति को देखना है, पर उसकी आत्मा बाहर से नहीं देखी जा सकती। इसलिए मुर्गे को बाहर से देखकर जो चित्र बनाता है, वह

मुर्गे के शरीर का चित्र बनाना है, मुर्गें की आत्मा का नहीं। मुर्गे की आत्मा का सिर्फ मुर्गा जान सकता है। उस बूढ़े ने कहा, बड़ी बात तो यह है कि तुम मुर्गा बनोगे कैसे? और अगर बन गए तो फिर मेरा चित्र कौन बनाएगा? क्योंकि मुर्गे तो बहुत हैं। उस बूढ़े ने कहा, मैं एक कोशिश करता हूं, लेकिन जल्दी नहीं। जल्दी नहीं हो सकता यह काम। अगर आदमी की तस्वीर बनवानी हो, तो मैं अभी बना दूं क्योंकि मैं आदमी हूं। मुर्गे की तस्वीर मैं कैसे बना सकता हूं? मुर्गे को जाना ही नहीं कि मुर्गा भीतर से कैसे अनुभव करता है। जब वह बांग देता है तो उसके भीतर क्या होता है, जब वह भयभीत होकर भागता है तो उसके भीतर क्या होता है, मुझे कुछ पता नहीं। मैं जानता हूं कि जब मैं भयभीत होता हूं तो क्या होता है, जब मैं क्रोध से भरता हूं तो क्या होता है, जब मैं प्रेम से भर जाता हूं तो भीतर क्या होता है, वह मैं जानता हूं। आदमी कैसा अनुभव करता है, वह मैं जानता हूं, आदमी क्या है, वह मैं जानता हूं। मुर्गे को जानने की मैं अब कोशिश करता हूं।

वह चित्रकार एक जंगल में चला गया, तीन साल की मोहलत मांग कर। राजा ने छह महीने बाद अपने आदमी भेजे कि देखो वह बूढ़ा है कि मर गया। आदमी ने वहां से लौटकर कहा कि आप पागल के चक्कर में पड़ गए है। वह जंगल मुर्गों के साथ बैठा हुआ है, कपड़े सब खो गए हैं, नंगा है। मुर्गों की तरह छलांग लगाता है, मुर्गों की तरह चिल्लाता है। हमें देखकर वह मुर्गे की तरह बांग देने लगा। हमने कहा, हो गया! इस पागल से कैसे चित्र बनेगा? यह मुर्गा हो जाएगा, यह तो ठीक है, लेकिन चित्र कैसे बनाएगा? साल भर बीत गया। फिर आदमी गए। दो साल बीत गए, तीन साल बीते। वह आदमी एक दिन दरबार में आकर खड़ा हो गया नंगा और मुर्गे की बांग दी। राजा ने अपने सिर पर हाथ मार लिया। उसने कहा, यह तो ठीक है कि आप मुर्गे की बांग सीख गए। लेकिन चित्र कहां है? उसने कहा, चित्र तो अब एक क्षण में बन जाएगा। चित्र बनाने में क्या देर लगती है? मैंने मुर्गे का जीवन जीने की कोशिश की है। हालांकि वह पूरा प्रामाणिक नहीं होगा, क्योंकि फिर भी मैं आदमी हूं। लेकिन अब मैं मुर्गे के पास रहा हूं, मुर्गे से लड़ा हूं, मुर्गे को प्रेम किया है, मुर्गे से दुश्मनी की है, मुर्गे से दोस्ती की है, मुर्गे की भाषा मैं समझने लगा हूं, मुर्गे मेरी भाषा समझने लगे हैं। अब मैं कुछ थोड़ा मुर्गे को बना सकता हूं। उसने कलम उठाई और चित्र बना दिया। एक मुर्गे को अंदर बुलाया। चित्र देखकर मुर्गा दरवाजे पर ही ठहर गया और जोर से उसने बांग दी। कमरे के भीतर आने से मुर्गे ने इंकार कर दिया। कमरे के भीतर और भी जानदार मुर्गे हैं। मुर्गा डरा और भागने लगा। मुर्गे को भीतर लाने की कोशिश की, मुर्गा बाहर भागने लगा। उस चित्रकार ने कहा--बस, ठीक है, यह मुर्गा काम देगा, क्योंकि इसे मुर्गा भी मानता है कि यह मुर्गा है।

आदमी न ईश्वर को जान सकता है, न आदमी दूर की अनंत बातों को। आदमी अगर प्रामाणिक रूप से कुछ जान सकता है तो सिर्फ आदमी को। और अगर आदमी को जान ले तो आदमी इतनी बड़ी इकाई है कि आदमी को जितना जानता चला जाए उतनी नई-नई दिशाएं आदमी के भीतर से खुलती हैं। और उन दिशाओं से वह वहां तक की भी यात्रा कर सकता है जहां हमें नहीं दिखाई पड़ता कि आदमी जुड़ा हुआ है। हम अपने भीतर ही नहीं गए हैं। न हम अपने क्रोध को जानते हैं, न अपने प्रेम को, न अपनी चिंता को, न अपनी अशांति को, न अपने तनावों को, न अपनी नींद को, न अपने जागरण को, हम कुछ भी नहीं जानते अपने बाबत। हम सोते जरूर हैं लेकिन कोई अगर पूछ ले कि नींद क्या है, एक आदमी भी उत्तर नहीं दे सकता। हम कहेंगे कि हम सो जाते हैं। लेकिन नींद क्या है? यह कौन सी घटना है जो नींद में घट जाती है और आदमी एकदम किसी और दुनिया में चला जाता है। जागरण क्या है? क्रोध क्या है? और प्रेम क्या है? मनुष्य के व्यक्तित्व को हम केंद्र बनाएंगे तो ये सारे आयाम खोजने पड़ेंगे। जितना हम इन आयामों में खोज करते हैं उतने ही नए-नए द्वार खुलते जाते हैं और एक दिन मनुष्य द्वार बन जाता है परमात्मा का और हम मनुष्य को जानकर उसे जान लेते हैं जिसे

मनुष्य को जाने बिना जानने का कोई उपाय नहीं है। जिस दिन हम मनुष्य के व्यक्तित्व के सारे पहलू जान लेते हैं, उसी दिन मुक्ति शुरू हो जाती है। क्योंकि जो निरर्थक है, वह गिर जाता है और जो सार्थक है वह शेष रह जाता है। एक आदमी जानता है तो कांटों पर नहीं चलता, नहीं जानता है तो चला जाता है। जानता है तो फिर कांटों से बच कर चलता है। जैसे ही हम भीतर जानने लगते हैं, जीवन के जो कांटे हैं वे विसर्जित होने लगते हैं। अभी तो हमारी हालत ऐसी है कि हम कांटे बोते हैं, उनको पानी डालते हैं, उनको खाद डालते हैं, उनको बड़ा करते हैं और जब लहुलुहान हो जाते हैं तो चिल्लाते हैं कि हम इन अशांतियों से कैसे बचें? हम ही अशांतियों को पैदा करते हैं, निर्मित करते हैं, हम उनको जन्मदाता हैं, उनको पानी देते हैं और संभालते हैं, उनको बड़ा करते हैं। जब अशांति प्राणों को छेदने लगती हैं तो गुरु के चरणों में जाकर पूछते हैं कि शांत होने का रास्ता बताओ। वह हमें कह देता है कि जाओ, राम-रात जपो और शांत हो जाओ। जैसे राम-राम न जपने से अशांति पैदा हुई हो। अगर राम-राम न जपने से अशांति पैदा हुई हो तो तब तो राम-राम जपने से चली जाएगी, लेकिन अशांति को पैदा करने के कारण बिल्कुल दूसरे हैं। उनके राम-राम से कोई संबंध ही नहीं। वे कारण मौजूद रहेंगे और आप राम-राज जपते रहेंगे। तब परिणाम यह होगा कि अशांति कायम रहेगी और राम-राम जपना एक नई अशांति हो जाएगी। सारी अशांति अपनी जगह है। वह सब अपनी जगह है और ऊपर से घृणा और क्रोध से भरा हुआ आदमी राम-राम भी जप रहा है। यह एक और परेशानी उसने मोल ले ली है। इसलिए तथाकथित धार्मिक आदमी और भी अशांत हो जाते हैं। एक साधारण आदमी उतना अशांत नहीं मिलेगा जितना धार्मिक आदमी शांत मिलेगा। एक साधारण आदमी उतना क्रोधी नहीं मिलेगा, जितना संन्यासी क्रोधी मिलेगा। उसका कारण है। क्योंकि सारी अशांतियों के कारण तो अपनी जगह मौजूद है और उन्होंने नए पागलपन ईजाद कर लिए हैं। इनकी अशांति गहरी हो जाएगी, दुगुनी हो जाएगी। कोई आदमी कभी इस तरह शांत नहीं हो सकता। ध्यान रहे, अशांत आदमी शांत हो ही नहीं सकता। आप कहेंगे फिर तो बड़ी मुश्किल हो गई। हम तो सब अशांत हैं फिर शांत कैसे होंगे? अशांत आदमी कभी शांत नहीं होता। अशांति को समझ लें तो अशांति गिर जाती है और जो शेष रह जाता है उसका नाम शांति है। शांति अशांति के विपरीत नहीं है कि आप अशांत हैं और शांत हो जाएं। शांति अशांति का अभाव है। जब आप अशांत नहीं रह जाते हैं तब जो घटना घटती है उसका नाम शांति है। इसलिए सवाल शांत होने का नहीं है, सवाल अशांति को जानने-पहचानने का है। अशांति को जितना कोई आदमी पहचान लेगा, उतना अशांत वह कम होगा। जितनी गहरी पहचान बढ़ेगी, अशांति गिरती चल जाएगी। एक दिन आएगा, अशांति के सारे कारण जान लिए जाएंगे, फिर कैसे कोई अशांत होगा? अशांति खत्म हो जाएगी। लेकिन हम अशांति खोना नहीं चाहते और शांति पाना चाहते हैं, तब एक अदभुत एक तनाव पैदा होता है जो जिंदगी को खो जाता है। हिंसा से भरा हुआ आदमी अहिंसक नहीं हो सकता। हां, हिंसा चली जाए तो जो शेष रह जाती है उसका नाम अहिंसा है। आदमी अपने को जितना जाने, उतना ही वह बदलने लगता है। ज्ञान से तेरा मतलब वेद का ज्ञान नहीं, उपनिषद का ज्ञान नहीं। ज्ञान से मतलब मनुष्य का ज्ञान, वह जो मैं हूं, उसका ज्ञान जैसा मैं हूं। उस ज्ञान का मतलब यह नहीं है कि किताब में लिखा है कि मैं ब्रह्म हूं तो बैठ कर आत्मज्ञानी कह रहा है कि मैं ब्रह्म हूं। मैं ब्रह्म हूं, यह कोई ज्ञान नहीं है। किताब में लिखा है कि आप ब्रह्म हैं और आप भली भांति जानते हैं कि ब्रह्म आप बिल्कुल नहीं हैं। आप क्रोध हो सकते हैं, दुश्मन हो सकते हैं, जहर हो सकते हैं, ब्रह्म कहां? और आप ब्रह्म होते तो फिर यह दोहराने की क्या जरूरत भी बैठकर? ब्रह्म कहीं बैठ कर दोहराता होगा कि मैं ब्रह्म हूं? अगर कोई पुरुष किसी कोने में बैठकर दोहराने लगे कि मैं पुरुष हूं तो पास-पड़ोस के लोगों को शक होगा कि कुछ गड़बड़ है। क्योंकि अगर यह है, तो दोहराना क्या है। बात खतम हो गई। हम

हमेशा वही दोहराते हैं जो हम नहीं होते। ध्यान रखना, हम हमेशा वही घोषणा करते हैं जो हम नहीं होते हैं। अज्ञानी ज्ञान की घोषणा करता है, मूढ़ सर्वज्ञ होने की घोषणा करता है, अहंकारी विनम्र होने की घोषणा करता है, हिंसक अहिंसक होने का दावा करता है। लेकिन जो होता है उसके दावे खो जाते हैं, उसे दावे का पता ही करता है। लेकिन जो होता है उसके दावे खो जाते हैं, उसे दावे का पता ही नहीं चलता। जिसके भीतर से हिंसा चली गई, उसे कैसे पता चल सकता है कि मैं अहिंसक हूं? होने का पता सिर्फ उनका चलता है जितनी हिंसा पूरी तरह मौजूद है। स्वयं के ज्ञान का मतलब यह नहीं है कि शास्त्रों में जो लिखा है उसे हम दोहराएं। स्वयं के ज्ञान का मतलब है जो हूं अपनी असलियत में, जैसा भी हूं। बहुत नारकीय है यह स्थिति। उसे खोलेंगे तो बहुत दुर्गंध आएगी। लोग आम तौर से कहते हैं कि अगर हम शरीर को खोलेंगे तो हड्डी मांस-मज्जा मिलेगा। लेकिन अपनी आत्मा को खोलिएगा तो हड्डी, मांस-मज्जा से भी ज्यादा गंदगी मिलेगी, क्योंकि शरीर में कहीं भी क्रोध नहीं है, शरीर में कहीं भी घृणा नहीं है, शरीर में कहीं भी ईर्ष्या नहीं है। ये सब कहां हैं? ये आप हैं। ये हमारे भीतर हैं। वहां खोलना पड़ेगा। वहां खोलने से बहुत घबराहट होगी। लेकिन उसे खोले बिना, उसे जाने बिना कोई रूपांतरण नहीं है। और जिस दिन हम शास्त्रों को नहीं, परमात्मा को नहीं, मनुष्य को केंद्र बनाएंगे, उस दिन हम मनुष्य को पूरा खोल सकेंगे। और ध्यान रहे जितना हम स्वयं को जान लें, उतने ही हम दूसरे होने शुरू हो जाते हैं। क्योंकि जानते हुए कोई भी आदमी दीवाल से निकलने की कोशिश नहीं करता, दरवाजा मालूम हो तो आदमी दरवाजे से निकलता है। दरवाजा मालूम न हो तो दीवाल से टकराता है। हमें पता ही नहीं कि हम क्या हैं? इसलिए जिंदगी में रोज टकराहट होती है। मनुष्य को जानने से एक दिन परमात्मा उपलब्ध हो जाता है।